वर्ष ३ ओ३म् **भक्ति** ओ३म् संख्या ५

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द
माघ १९८५

इस अङ्क का मूल्य ।)

MAHARATHI PRESS, DELHI.

जगदम्बा श्रीदुर्गा ।

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ३ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, माघ पूर्णिमा सं० १९८५। | अङ्क ५

भगवद्वचन।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१॥

हे अग्ने! हवि के भक्षणार्थ हमारी स्तुति से पधारिये और देवताओं को हवि पहुंचाने के निमित्त उनको बुलाने वाले होकर बिछे हुए कुशासनपर विराजिये ॥१

त्वमग्ने यज्ञानाꣳहोता विश्वेषाꣳहितः। देवेभिर्मानुषे जने ॥२॥

हे अग्ने! तुम सकल यज्ञों के सिद्ध करने वाले, यजन के योग्य तथा देवताओं के आह्वाहन करने वाले हो। तुम मनुष्य के विषय में स्तुति करने वाले ऋत्विजों द्वारा गार्हपत्य आदि रूप से स्थापित किये जाते हो ॥२॥

प्रेष्ठं वो अतिथिꣳस्तुषे मित्रमिव प्रियम्। अग्ने रथं न वेद्यम् ॥३॥

हे अग्नि देव! स्तुति करने वालों को धन दाता होने से परम प्रिय अतिथि के तुल्य सब के पूज्य

सखा के समान प्रसन्नता देने वाले रथ के समान लाभ के हेतु ऐसे पूज्य आपको स्तुति से प्रसन्न करता हूं ॥३॥

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः । उत द्विषोमर्त्यस्य ॥३॥

हे अग्निदेव ! तुम हमें बहुत सा धन देकर धन न देने वालों से और बल देकर द्वेष करने वाले मनुष्यों से रक्षा करो ॥४॥

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ५ ॥

हे अग्नि देव ! अथर्वा तुमको मूर्धा की समान धारण करने वाले सकल जगत् के धारण कर्ता कमल के पत्ते में मथ कर उत्पन्न करता है ॥५॥

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ती देव कृष्टयः । अमैरमित्र मर्दय ॥ ६ ॥

हे अग्निदेव ! मनुष्य बल के निमित्त तुम्हारे अर्थ नमस्कार शब्द का उच्चारण करते हैं । इस कारण मैं भी तुमको नमस्कार करता हूं । बल से शत्रु को नष्ट करो ॥६॥

उपत्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥७॥

हे अग्नि देव ! हम नित्यप्रति रात दिन बुद्धि से नमस्कार करते हुए तुम्हारे समीप प्राप्त होते हैं ॥७॥

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजं तमध्वराणाम् ॥८॥

पूंछ वाले घोड़े के समय यज्ञों के स्वामी तुझ प्रसिद्ध अग्नि को स्तुति से वन्दना करने को प्रवृत्त हुए हैं ॥ ८ ॥

अग्ने रक्षाणो अंहसः प्रति स्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥९॥

हे अग्निदेव ! तुम हमारी पाप से रक्षा करो । हे देव ! जरा रहित आप हिंसा करना चाहने वाले शत्रुओं को अत्यन्त ताप देने वाले तेज से भस्म करो ॥९॥

अग्ने युंक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ॥१०॥

हे प्रकाशमान अग्ने ! उन घोड़ों को रथ में जोड़ो जो तुम्हारे शीघ्र गामी सुशील घोड़े ठीक तुम्हारे रथ को ले जाते हैं ॥१०॥

नित्वा नक्ष्य विशपते द्युमन्तं धीमहे वयम् । सुवीरमग्न आहुत ॥ ११ ॥

उपासना करने योग्य धनपते अनेकों यजमानों से होमे हुए हे अग्निदेव ! दीप्तिमान जिसकी स्तुति करने वाले कल्याण के भागी होते हैं ऐसे तुम्हें हमने स्थापित किया है ॥११॥

भक्तों के चरित्र

घाटम जी

साधारण तौर पर लोगों का यह खयाल है कि जो आदमी आरम्भ से बड़े सदाचारी, और तपस्वी होते हैं वही भगवान् की भक्ति करने को समर्थ हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं है प्रत्येक मनुष्य अत्यन्त नीच अवस्था से भी ऊपर को उठ सकता है, उठ ही नहीं सकता समस्त पापों से छूट कर भगवान् का प्यारा और लाड़ला पुत्र बन सकता है। केवल एक बार सचाई से भगवान् की तरफ निहारने की बात है। प्रत्येक प्राणी को इस बात का अनुभव है कि उसका सबसे अधिक प्रेमी और सबसे अधिक हितैषी भगवान है। हमारे समस्त दोषों को भूल कर याद करते ही वह बड़े प्रेम से हमारी बात सुनता है। हम अपने अज्ञानान्धकार और क्षुद्र बुद्धि से इस भ्रम में पड़े हुये रहते हैं कि हम जैसे पापियों की भगवान् क्या सुनेगा परन्तु वहां तो यह बात ही नहीं है केवल सचाई से याद करने की देर है उसको सुनने में देर नहीं है। वह तो दया का भण्डार और प्रेम का पुंज है वह तो अत्यन्त से अत्यन्त पापी को भी उसी प्रेम की दृष्टि से देखते हैं कि जिस दृष्टि से महान् योगी महात्मा को देखते हैं वहां छुटाई बड़ाई नहीं है। घृणा का तो वहां काम ही क्या है जब भी जीव सचाई और प्रेम से भगवान् की तरफ निहारता है तब ही भगवान् दौड़ कर उसे गले लगाने को तय्यार रहते हैं। अविश्वासी जनों को यह विश्वास नहीं आता कि गज के काज नङ्गे पैरों धाए थे परन्तु मैं कहता हूं वह अपने से पृथक् कहां हैं वह तो हर समय अपने साथ रहता है इसमें अविश्वास और आश्चर्य की बात ही क्या है। अविश्वास के होने से जिसका दूसरा नाम भ्रम और अज्ञान है वह दिखाई नहीं देता। जिनको विश्वास है उनके हर दम पास है। कबीर जी कहते हैं:-

ना मन्दिर में ना मसजिद में
ना काशी कैलाश में,
ना मैं भंवर गुफा में रहता,
सब श्वासन की श्वास में।
खोजी होय तुरत मिल जांऊ,
एक पल ही की तलाश में॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
मैं तो हूं विश्वास में॥

घाटम जी ऐसे ही विश्वासी भक्त थे। इनके चित्त की वृत्तियां एकाग्र थीं। यह "व्यवसायात्मिका बुद्धि" के पुरुष थे। श्रद्धा और विश्वास एकाग्र चित्त वाले ही में होते हैं जिनका चित्त भान्तिर के पदार्थों लगा रहता है वह विश्वास के पात्र नहीं होते। घाटम जी सच्चे विश्वासी और गुरुनिष्ठ थे। इनका जन्म

खोड़ी गांव में जैपुर राज्यान्तर्गत मीना जाति में हुआ था। मीना जाति चोरी और ठगी में प्रसिद्ध है यह भी चोरी और बदमाशी का काम करते थे। एक बार कोई धर्म्म का संस्कार उदय हुआ, विचार करने लगे कि सारी आयु चोरी और बदमाशी में व्यतीत की, कभी भगवान् का भजन नहीं किया यह मनुष्य जन्म अकारथ गया। यदि कोई साधु महात्मा मिल जावे तो भगवान् को जानने का रास्ता मालूम करूं। संयोगवश एक साधु मिल गया। उसके पास जाकर अपनी अभिलाषा प्रकट की, कि "महाराज मुझे भगवान से मिलने की राह बताइये और अपना चेला बना लीजिये! साधु ने कहा चोरी छोड़ दे और भगवान की भक्ति में लगजा" इसने उत्तर दिया "महाराज सारी उमर यही काम किया इसका छूटना कठिन है इसके अतिरिक्त और जो आज्ञा हो पालन करने को तय्यार हूं"। महात्मा समझ गए विश्वासी और सच्चा आदमी है, छल कपट से रहित है इसका यह बाह्य पाप कर्म्म शीघ्र नष्ट हो जावेगा। उसको संतोष दिया, कहा अच्छी बात है चोरी करते२ ही तेरा कल्याण हो जावेगा तू चार बातें धारण करले।

१. सत्य बोलना २. साधु सेवा करना ३. भगवान् का भोग लगाने के पश्चात् भोजन करना ४. प्रेमके साथ भगवान् की आरति और कीर्तन करना। धाटम जी ने इन सब बातों को धारण कर लिया। महात्मा गुरु मंत्र बताकर चले गए। जो गुरु के वचन पर विश्वास करके कर्तव्य परायण हो जाता है उस की सब बुराइयां आप ही छूट जाती हैं।

अब धाटम जी का जीवन पलट गया। अब उनका सब कर्म्म भगवत् अर्पण होगया, अपना पन समाप्त होने लगा। भगवान् ने गीता में कहा है:-

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥

हे अर्जुन! यदि अभ्यास करने में भी असमर्थ है तो मेरे लिए कर्म कर। मेरे लिए कर्म करता हुआ भी तू मोक्ष को प्राप्त होजावेगा।

बात सीधी है जब हम अपने लिये कर्म ही नहीं करते फिर उनके फल के भागी हमको कौन बना सकता है। अर्जुन ने आचार्य और पितामहों को मार कर भी मोक्ष प्राप्त की। धाटम जी को जो कुछ चोरी में मिलता वह साधु सेवा में खर्च कर देते और भगवान् को भोग लगा कर भजन कीर्तन में मस्त रहते। एक दिन इनके हां साधुओं की मंडली आगई। घर में कुछ न था चोरी के लिये निकले और गांव के खलियान में से गेहूं बान्ध लाए परन्तु चिन्ता बहुत रही कि कहीं पता लग जावेगा तो साधु सेवा में विघ्न पड़ेगा। भगवान् की दया उस दिन मूसलाधार वर्षा होगई और खोज का पता नहीं चला।

एक समय उनके गुरु के हां भण्डारा था। गुरु जी की सेवा में जाना आवश्यक था परन्तु घर में कुछ भी न था। इसी चिन्ता में कई दिन व्यतीत होगए अन्त में निश्चय करके राजा के महलों में चोरी करने के लिये चले गए। पहरेदार ने पूछा कौन है? उत्तर दिया 'चोर हूं' पहरेदार ने समझा कोई बड़ा आदमी है हंसी करता है। 'वहां जाकर, घुड़शाला में एक उत्तम घोड़े को पसन्द करके खोल लिया। घुड़शाला के दरोगे ने पूछा कौन हो घोड़ा कहां ले जाते हो? "उत्तर दिया चोर हूं चोरी करके ले जाता हूं"। वह भी भ्रम में पड़ गया। वह घोड़ा ले

कर गुरु के पास पहुंचे सन्ध्या का समय होरहा था रास्ते में एक मन्दिर में आरती हो रही थी वहां घोड़े को बान्ध कर आरती में शामिल होगए राजा को पता लगा कि सब से उत्तम घोड़ा चोरी गया, उसने कोतवाल को बुलाकर स्वयं घोड़े की तलाश में जाने की आज्ञा दी। कोतवाल घोड़े के पांव के चिन्ह लेता हुआ मन्दिर में पहुंच गया। यह आरति कर रहे थे और घोड़ा बन्धा हुआ था। भगवान् को भक्त की लाज रखनी थी घोड़े का रंग पलट गया। जब से यह कहावत प्रसिद्ध है।

सांचे चोर चुराया घोड़ा।
परमेश्वर ताका रंग मोड़ा॥

कोतवाल ने घोड़े का सब हुलिया मिला लिया परन्तु रंग में भेद था। बड़ी चिन्ता में पड़ गया उस का सब पुरुषार्थ व्यर्थ दीखने लगा भविष्य अंधकारमय होगया, समझा न मालूम राजा क्या दण्ड देगा? घाटम जी आरति करके बाहर आए उनको घबराये हुए और दुःखी देख कर बोले तुम कौन हो और क्यों दुःखी होरहे हो? वह बोले भक्तजी क्या कहें कोई आदमी राजा का घोड़ा चुरा लाया हम तलाश में आए थे। घोड़ा तो यही है परन्तु रंग नहीं मिलता इसलिए हम बड़ी चिन्ता में हैं कि क्या करें। यदि घोड़ा न मिला तो राजा न मालूम क्या दण्ड देवें: भक्तों का हृदय कोमल होता है वह दूसरों का दुःख नहीं देख सकते। घाटम जी बोले भाई तुम घबराओ मत। घोड़ा मैंने चुराया है और यही घोड़ा है भगवान् ने अपनी दया से इसका रंग पलट दिया है। मैं तुम्हारे साथ राजा के पास चलता हूं तुम अपने चित्त को शान्त करो।

सब के सब मिल कर राज के पास गए। राजा सब वृत्तान्त को सुन कर और घोड़े को देख कर भगवान् की महिमा और भक्ति के प्रभाव से गद् गद् होगया घाटमजी से कहा मेरे योग्य सेवा बताओ तुम्हारा जीवन धन्य है जो तुम भगवत् के प्यारे हो, घाटमजी बोले गुरु जी के भण्डारे में जाना है अब तो इस घोड़े के सिवाय कुछ नहीं चाहिये। राजा ने बहुत सा धन और घोड़ा उनकी भेंट किया। लग्न की बात है भगवान् को दया करते क्या देर लगती है वह तो एक क्षण में ही जीव का उद्धार कर देते हैं।

प्रार्थना

को प्रभु दीनबन्धु दिन करसो ॥टेक॥
उदय होत दुःख दूर होत है, ताप तिमिर सब झरसो॥ १॥
जो ध्यावत पावत फल चारों, देत सदा शुभ वरसो॥ २॥
देवीसहाय शरण ताही के, ब्रह्मरूप हरि हरसो॥ ३॥

भक्ति महारानी का शीश महल

[ले० श्री० पूज्य भोले बाबा जी अनूपशहर

परंब्रह्म परं सत्यं सच्चिदानन्द लक्षणम् ।
अप्रमेयमनिर्देश्यमात्मज्योतिरूपास्महे ॥

छप्पय

भक्ति महल अनूप, सूर्य जहं नांहि प्रकाशत ।
नहिं विद्युत नहिं अग्नि, चन्द्र तारा नहिं भासत ॥
बिना तेल बिनु बाति, नित्य रहता उजयारा ।
ज्योतिन का भी ज्योति, शुद्ध चित् नमस्कारा ॥
भोला ! यदि हम देखलें, शीशमहल यह दिव्य तप
सबमें दीखें श्याम ही, लड़ें न हम फिर श्वान सम ॥

मंसारामः– महाराज ! कल आपने भगवन् को स्वरूप बताया था। कृपया आज यह बताइये कि भगवन् रहते कहां हैं। ठौर ठिकाना जाने बिना कोई किसी की खोज नहीं कर सक्ता, ठौर ठिकाना जान कर ही किसी का पता लगा सके हैं, और पा भी सके हैं, नहीं तो कस्तूरी मृग कीसी मसल होगी ! कस्तूरी नाभी में रक्खी हुई है और मृग वन में ढूंढता २ हैरान हो रहा है ! या वह मसल होगी कि बगल में छोरा, नगर में ढंढोरा ! बुद्धिमान को चाहिये कि जो करना हो, उसका आदि अंत, हानि लाभ, भली प्रकार विचार ले ! जिस वस्तु की खोज करनी हो, उसका अता पता यथा संभव प्रथम से जान ले ! नहीं तो पीछे पछताना पड़ता है, लोक में हंसी होती है और कष्ट भी उठाना पड़ता है। महाराज ! बुरा न मानिये, दूध का जला हुआ छाछ फूंक २ कर पिया करता है ! जन्म जन्मांतर के अन्धे के समान अंधेरे स्थानों में घूमते २ लाखों ठोकरें खा चुका हूं, अब ठोकरें खाने से और आपके समान संत महात्माओं का संग करने से कुछ २ आंखें खुलती जाती हैं। अब जो कार्य किया करूंगा, सोच विचार कर किया करूंगा, ऐसा निश्चय कर लिया है, कहा भी है:- 'बिना विचारे जो करै सो पाछे पछिताइ'! कृपा करके बताइये कि क्या भगवन् का सर्वत्र स्थान है अथवा उन्होंने किसी एक स्थान पर आसन जमा रक्खा है अथवा आपके और मेरे समान वे भी उठाऊ चूल्हा ही हैं ? चाहे जहां घूमते रहते हैं ! सुना है कि जहां भक्तों ने स्मरण किया, वहीं पहुंच जाते हैं, इससे तो यह ही सिद्ध होता है कि घूमते रहते हैं। अकिय तो कहीं आ जा नहीं सक्ते। और न भक्तों का कुछ काज संभाल सक्ते हैं।

मस्तरामः– भाई ! मंसाराम ! ग्रेजुयेट हो, तुम तो हेडमास्टर थे, प्रोफेसर भी बहुत दिनों तक रहे हो, कुछ दिनों तक प्रिंसिपल भी रह चुके हो, फिर भी ऐसा भोंडा सवाल करते हो कि भगवन्

कहां रहते हैं! भाई! यह तो बच्चों को सब से प्रथम सिखाने की है। जब तुम को स्वयं ही मालूम नहीं है कि भगवन् कहां हैं, फिर तो लड़कों को पढ़ाया क्या होगा बहिकाया ही होगा!

लोभी गुरू लालची चेला,
दोनो नरक में ठेलम ठेला।

तुम्हारे सिखाये हुये लड़के अवश्य ज्ञात ज्ञेय हो गये होंगे और जरूर देश का उद्धार करेंगे! अच्छा हुआ तुम को नेता आदि की पदवी नहीं दी गई, नहीं तो तुम अवश्य भारत की लुटिया डुबा देते! सच है "खुदा गंजे को नाखून नहीं देता, नहीं तो खुजा खुजा कर ही मर जाय! शरमाओ मत, चिराग के नीचे अंधेरा होता ही है, पंडित जी के पढ़ाये हुये लड़के मंत्री दीवानादि अच्छे२ ओहदों पर पहुंच जाते हैं और पंडितजी वही बारह खड़ी पढ़ाते रहते हैं। भाई! मंसाराम! तुम्हारा प्रश्न ऐसा है जैसे कोई पूछे कि ब्रह्माण्ड भर को उष्णता और प्रकाश देने वाला सूर्य कहां रहता है अथवा सब को शीतलता देने वाला और पालन पोषण करने वाला चन्द्र कहां रहता है, अथवा सबको अवकाश देने वाला आकाश कहां रहता है अथवा प्राणी मात्र का उपकारक सब का जिलाने वाला वायु कहां रहता है अथवा औषधि, वनस्पति को सींचने वाला, कीट, पतंग, पशु, पक्षी मनुष्यादि की प्यास बुझाने वाला जल कहां रहता है अथवा सबको धारण करने वाली पृथ्वी कहां रहती है। जैसे ये प्रश्न हैं इसी प्रकार तुम्हारा प्रश्न है क्योंकि सूर्य्य चन्द्रादि सबके निर्वाह करने वाले सब को प्रत्यक्ष हैं, और अपने तेज द्वारा सर्वत्र व्यापक हैं, फिर उन के संबंध में पूछना ही क्या? इसी प्रकार सबके स्वामी सबके अधिष्ठान, सबके नियंता, सब के सत्ता स्फूर्ति देने वाले आनन्द स्वरूप भगवन् सर्वत्र भरपूर हैं, उनके लिये पूछना मूर्खता ही है परंतु तूने अब तक मूर्खों का ही संग किया है, विद्वानों का संग नहीं किया! विषयी, कामी पुरुषों के साथ में रहा है, संत महात्माओं का समागम नहीं किया! पशु पक्षियों की कहानियां सुनी हैं, भगवद्भक्त के चरित्र नहीं सुने। ऊपर से आंखों वाला दीखता है, हिये की फूटी हुई हैं, फिर भगवन् तुझे कैसे दिखाई दें तभी पूछता है कि भगवन् कहां रहते हैं, फिर भी अपने को चतुर और विचारवान् मानता है. छाछ फूंक २ कर पीता है, ऐसा करना अवश्य चतुराई है, यदि ऐसा करता रहा तो किसी न किसी दिन अवश्य चतुर हो जायगा! भाई! भगवन् कहां नहीं हैं? सर्वत्र भगवन् ही तो हैं! जो कुछ दीख रहा है, सबमें भगवन् विराजमान हैं! एकाक्षर रूप ॐकार में भगवन् हैं, सोलह स्वर और छत्तीस व्यंजनों में भगवन् हैं, उदात्त अनुदात्त और स्वरित यत्न विशेष में भगवन् हैं, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत मात्राओं में भगवन् हैं, स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत और विवृत में भगवन् हैं! ऋगवेद में, यजुर्वेद में, सामवेद में और अथर्व वेद में भगवन् हैं! शिक्षा में, कल्प में, व्याकरण में, नियुक्त में, छन्द में और ज्योतिष में भगवन् हैं! वेदान्त में, सांख्य में, योग में, न्याय में, मीमांसा में और वैशेषिक में भगवन् हैं! पुराणों में, उप पुराणों में, इतिहासों में संहिताओं में नाटक में और काव्य में भगवन् हैं! जगन्नाथ में, रामेश्वर में, द्वारिका में और बद्रीनाथ में भगवन् हैं! जमना में गंगा में, सरस्वती में, नर्मदा में कृष्णा में, कावेरी में, सतलुज में, घाघरा में और सिन्धु में भगवन् हैं।

हिमालय में और विंध्याचल में भगवत् हैं! हरिद्वार में, अयोध्या में, मथुरा में, काशी में कांची में, अवन्तिका में और द्वारिका में भगवत हैं. बंगाल में, युक्त प्रांत में, पंजाब में, बम्बई में, मदरास में, और ब्रह्म प्रांत में भगवत् हैं! भारत में, ब्रह्मा में, जापान में, चीन में, तिब्बत में, अफगानिस्तान में, ईरान में, अरब में, और रूस में भगवत् हैं! एशिया में, यूरोप में, एफरीका में, उत्तरी ऐमेरिका में और दक्षिण में, पश्चिम में, उत्तर में ईशान में, आग्नेय में, नैऋत में, वायव्य में, पाताल में, और स्वर्ग में भगवत् हैं! वायु लोक में, आदित्य लोक में वरुण लोक में, अग्नि लोक में, इन्द्र लोक में, उपेन्द्र लोक में, पृथ्वी लोक में, यम लोक में, चन्द्र लोक में, ब्रह्म लोक में, विष्णु लोक में और शिव लोक में भगवत् हैं. भूत में, वर्तमान में, और भविष्य में भगवत् हैं! निमेष में, काष्ठा में, कला में, क्षण में और मुहूर्त्त में भगवत् हैं! दिन में, रात में, सप्ताह में पक्ष में, मास में, ऋतु में, अयन में और संवत्सर में, भगवत् हैं! युग में, मन्वन्तर में, कल्प में और कल्प के क्षय में भगवत् हैं! सतोगुण में रजोगुण में और तमोगुण में भगवत् हैं! आकाश में, वायु में, तेज में, जल में और भूमि में भगवत् हैं! शब्द में, स्पर्श में, रूप में, रस में, और गंध में भगवत् हैं! प्राण में, अपान में, व्यान में, समान में, और उदान में भगवत् हैं! श्रोत में, त्वचा में, चक्षु में, रसना में घ्राण में भगवत् हैं! वाणी में पाणि में, पाद में, उपस्थ में और वायु में भगवत् हैं! मन में, बुद्धि में, चित्त में, और अहंकार में भगवत् हैं! जरायुज में अंडज में, स्वेदज में और उद्भिज में भगवत् हैं! देव में दनुज में, मनुष्य में, कीट में पतंग में भगवत् हैं! स्थज में, सूक्ष्म में, कारण में, और कूटस्थ में, भगवत् हैं. जाग्रत में, स्वप्न में, सषुप्ति में और तुर्या में भगवत् हैं! विश्व में, तैजस में, प्राज्ञ में, और साक्षी में भगवत् हैं! विराट् में, हिरण्यगर्भ में, ईश्वर में, और महेश्वर में भगवत् हैं! ब्राह्मण में क्षत्रिय में, वैश्य में और शूद्र में भगवत् हैं! हिन्दू में मुसलमान में, ईसाई में, जैन में, बौद्ध में, यहूदी में, और पारसी में भगवत् हैं! शेख में, सैयद में, मुगल में, और पठान में, भगवत् हैं! सुन्नी में, शिया में, सूफी में भगवत् हैं. स्त्री में पुरुष में, नपुंसक में, भगवत् हैं। हे मंसाराम! ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यंत चराचर जगत् में भगवत् सर्वत्र व्यापक हैं। यह ही बात नीचे मुजंगी छन्द में कही है: -

ईश्वर सर्वत्र है

तुझे देखता हूं जहाँ देखता हूं।
छुपा देखता हूं अयां देखता हूं॥
यहाँ वहां है कहां तू नहीं है।
नहीं ठौर कोई जहाँ तू नहीं है॥ १॥
सभी धर्म में तू सभी पंथ में तू।
तुही आदि में है तथा अंत में तू॥
सभी रूप तेरे सभी नाम तेरे।
सभी देश तेरे सभी धाम तेरे॥ २॥
तुही है स्वरों में तुही व्यंजनों में।
तुही संधियों मात्र में बिन्दुओं में।
तुही है पदों में तुही वाक्य मांही।
तुही है वेद में और वेदांग माँही॥३॥
तुही मंदिरों में तुही मस्जिदों में।
तुही चर्च में मकबरों मर्घटों में॥

बनों में तुही है तुही है घरों में।
नदी पर्वतों में गुहा कंदिरों में ॥ ४ ॥
तुही वृक्ष हो फोड़ पृथ्वी उगे है।
तुही पक्षी होके हवा में उड़े है ॥
तुही गाय होवे तुही अश्व होवे।
तुही देव मानुष्य गंधर्व होवे ॥ ५ ॥
तुही विप्र हो वेद चारों पढ़े है।
तुही क्षत्र हो युद्ध मांही लड़े है ॥
बने वैश्य तू द्रव्य कूं है कमाता।
करे चाकरी शूद्र तुही काहाता ॥ ६ ॥
तुही ब्रह्मचारी गृहस्थी तुही है।
तुही है तपस्वी यती भी तुही है ॥
तुही ध्येय ध्याता तुही ध्यान होवे।
तुही ज्ञेय ज्ञाता तुही ज्ञान होवे ॥ ७ ॥
तुही पूज्य होवे तुही हो पुजारी।
तुही भक्त तू भक्तत्राता मुरारी ॥
तुही यज्ञ कर्ता तुही दान दाता।
तुही स्वर्ग से भूमि पै लौट आता ॥८॥
तुही रोग से ग्रस्त है भोगियों में।
बने वीर्य वाला तुही योगियों में ॥
कहीं होय है अज्ञ तू मूढ मानी।
कहीं संत हो भक्त ज्ञानी अमानी ॥९॥
कहीं हो विधाता कहीं इन्द्र होवे।
कहीं विष्णु होवे कहीं रुद्र होवे।
बने शारदा तू शची तू बने है।
बने है रमा तू उमा हू बने है ॥ १० ॥
तुही बुद्धि मांही तुही चित्त मांही।
अहंकार मांही तथा देह मांही।
सुने भी तुही बोलता भी तुही है।
तुही बैठता भागता भी तुही है ॥ ११॥
तुझे वेद वादी असंगी बताया।
अकर्ता अभोक्ता अनंगी अमाया ॥
नहीं तू करे है सभी तू करे है।
न तेरे बिना एक पत्ता हिले है ॥ १२ ॥
बिना पैर चाले बिना हाथ धर्ता।
बिना वाणी ही वेद उच्चार कर्ता ॥
बिना श्रोत्र श्रोता बिना नेत्र देखे।
बिना घ्राण सूंघे बिना जीभ चक्खे १३
यथा रज्जु की सर्पिणी रज्जु ही है।
नदी झांझ की वस्तुतः झांझ ही है ॥
यथा सीप चांदी खरी सीप ही है।
तथा वस्तुतः विश्व विश्वेश ही है।१४।
सभी विश्व है साक्ष्य विश्वेश साक्षी।
हुआ आपही भास्य है आप भासी।
न भूले उसे ही सभी भूल जावे।
वही भक्त भोला सयाना कहावे ॥१५॥

हे संसाराम! ऊपर मैंने तुझे जितनी वस्तुयें बताई, उन सब में सामान्य रूप से भगवत् व्यापक हैं। अब मैं उन स्थनों को बताता हूं, जहां विशेष रूप से भगवत् विद्यमान रहते हैं:- जहां भगवत् के अथवा भगवद्भक्तों के चरित्र सुनने में आते हैं जहां भगवत् के गुणों का कीर्तन होता है, जहां भगवत् का स्मरण, पूजन, अर्चन होता है, जहां भगवत् की स्तुति गाई जाती है वहां भगवत् विशेष रूप से रहते हैं। जो अपने को भृत्य और भगवत् को स्वामी मान कर अथवा जो भगवत् को अपना सखा मान कर उन का भजन करते हैं, भगवत् ऐसे

भक्तों के हृदय में सदा वास करते हैं जो अपना सर्वस्व भगवत् के अर्पण करते हैं, भगवत् सर्वदा उनके साथ रहते हैं, और शीघ्र ही संसार समुद्र से उनको पार करते हैं। ऐसा भक्त भगवत् के समान ही पूजने योग्य हैं।

जो मन से, वाणी से, शरीर से किसी को पीड़ा नहीं देते उन भक्तों के हृदय में भगवत् सदा निवास करते हैं। जहां सत्य व्यवहार होता है, वहां भगवत् वास करते हैं, जहां चोरी जूवा मदिरा पान नहीं होता, वहां भगवान् निवास करते हैं। जो स्त्री पुरुष व्यभिचारी नहीं होते, उनके यहां भगवत् सदा रहते हैं। जो आवश्यकता से अधिक सामग्री एकत्र नहीं करते, उनके ऊपर भगवत् सदा अनुग्रह करते हैं। जो भक्त बाहर और भीतर से पवित्र रहते हैं, भगवत् सर्वदा उनके साथ रहते हैं। जो लोग यथा लाभ में संतुष्ट रहते हैं, भगवत् उनके समीप ही बसते हैं। जो युक्त आहार विहार करने वाले हैं उनके ऊपर भगवत् सदा दया करते हैं। जो भगवन्नाम, भगवत् मंत्र का जप करते हैं और सदा सत्शास्त्रों का पठन पाठन करते हैं, भगवत् उनके मनोरथ शीघ्र पूर्ण करते हैं। जो सुखी पुरुषों के साथ मित्र भाव रखते दुःखी पुरुषों के ऊपर करुणा करते हैं पुण्यात्माओं को देख कर प्रसन्न होते हैं और पापी पुरुषों का संग नहीं करते, उनके ऊपर भगवत् करुणा करके शीघ्र उनका उद्धार करते हैं। जो लोग आसन लगाते हैं उनके पास शीतोष्ण, सुख दुःख, आदि द्वन्द्व भगवत् आने नहीं देते! जो विरक्त पुरुष प्राणायाम परायण होते हैं, उनके पाप भगवत् क्षीण कर देते हैं। जो इन्द्रियों को वश में रखते हैं, उनको भगवत् आरोग्य रखते हैं, दीर्घायु देते हैं और उत्तम लोकों की प्राप्ति कराते हैं। जो लोग धारणा, ध्यान और समाधी करते हैं, जिसको संसार के पदार्थों में वैराग्य होता है, जो शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान षट् साधन संपन्न होते हैं, जो मुमुक्षु होते हैं, उन पर भगवत् परम अनुग्रह करते हैं, जो महावाक्यों का गुरु मुख से श्रवण करते हैं, श्रवण किये हुये का ऊहापोह द्वारा मनन करते हैं और सदा भगवत् के ध्यान में यानी भगवत्तत्त्व के अनुसंधान में लगे रहते हैं, ऐसे पुरुषों को भगवत् अपना आत्मा ही मानते हैं और उनके समीप से भी समीप हैं।

हे मंसाराम! यद्यपि भगवत् समान हैं, न वे किसी से राग करते हैं और न किसी से द्वेष करते हैं तो भी जो भक्त भगवत् शरण में आते हैं, उन पर भगवत् अनुग्रह करते हैं और जो भगवत् विमुख होते हैं, उनका निग्रह करते हैं, जैसे अग्नि राग द्वेष रहित है तो भी पास आने वाले को प्रकाश और उष्णता देती है, इसी प्रकार भगवत् भी भक्तों पर अनुग्रह और अभक्तों का निग्रह करते हैं। भगवत् स्वरूप से निर्विकार अक्रिय और असंग हैं तो भी अपनी शक्ति द्वारा वे भक्तों और अभक्तों पर अनुग्रह और निग्रह करते हैं। भगवत् की शक्ति विद्या और अविद्या रूप से दो प्रकार की है। विद्या द्वारा भगवत् भक्तों पर अनुग्रह करते हैं और अविद्या द्वारा अभक्तों का विग्रह करते हैं। जैसे दर्पण के समीप जैसा मुख लेकर जाओ, उसी प्रकार दिखा देता है इसी प्रकार भगवत् भी भक्त के लिये सौम्य हैं, और अभक्त के लिये क्रूर हैं! सौम्यता और क्रूरता में भक्त अभक्त का भाव ही कारण है, भगवत् तो समान ही हैं! इसी लिये यह लोकोक्ति है कि भगवत् कैसे? जैसे को तैसे! जो पुरुष धन की

कामना, स्त्री पुत्रादि की ममता, विषय भोग की लालसा, लोकपरलोक की कामना, धर्माधर्म की चिंता, ब्रह्मादि देवताओं का ऐश्वर्य, इन सब से मुख मोड़ कर भगवत् प्रेम के लिये कर्म करता है भगवत् प्रेम के लिये यज्ञ करता है भगवत् प्रेम के लिये दान देता है, भगवत् प्रेम के लिये कायिक, वाचिक, मानसिक, तप करता है, भगवत् प्रेम के लिये जप करता है, जिसकी सब इन्द्रियों का व्यापार, सब प्राणों का व्यापार, तथा अंतःकरण का व्यापार भगवत् प्रेम के लिये होता है। सारांश यह है कि जो सबसे उपराम होकर भगवत् प्रेम में रंग जाता है, उस का हृदय कमल भगवत् का मुख्य निवास स्थान है, वह ही भक्ति महारानि का शीश महल है वहीं भगवत् सदा क्रीड़ा करते हैं! जो भक्त उस शीश महल में जाकर भक्ति महारानी और भगवत् के दर्शन करता है, वह कृत्य कृत्य हो जाता है! शीश महल में जाकर भक्ति, भगवत् और भक्त का भेद नहीं रहता, तीनों का अभेद हो जाता है! वह ही भक्ति की परा काष्ठा है, वह ही भगवत् का परम धाम है और वह ही भक्त का आत्मा है। सब महलों का शीश होने से वस्तुतः शीश महल वह ही है। भक्त का हृदय कमल उस की प्राप्ति करने वाला है इस लिये भक्त उसको भी शीश महल कहते हैं जैसे प्रज्ञान द्वारा ब्रह्म का प्रत्यक्ष होता है इस लिये वेद में प्रज्ञान को ब्रह्म रूप कहा है इसी प्रकार शीश महल भगवत् की प्राप्ति करने वाला होने से भक्ति महारानी का शीश कहलाता है, ऐसा भक्तों का कथन यथार्थ ही है! वहां सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि नहीं प्रकाशते और न वहां बुद्धि, मन, और इन्द्रियां प्रकाशती हैं, क्योंकि ये सब वहां तक पहुंच ही नहीं सकते, जड़ हैं और उसी परमात्मा रूप शीश महल की चेतनता से चेतन से भासते हैं। परमात्मा रूप शीश महल स्वयं प्रकाश है, किसी अन्य प्रकाश की अपेक्षा नहीं रखता! इस भगवत् रूप शीश महल को जो भक्त देख लेता है, उसको सब भगवत् स्वरूप ही भासते हैं! ब्रह्मा से चींटी तक में वह भगवत् को ही देखता है! किसी से राग अथवा द्वेष नहीं करता! हे मंसाराम! ऊपर जिन२ भिन्न पदार्थों में भगवत् व्यापक बताये हैं उन सब को भिन्न२ देखता हुआ भी भगवद्भक्त भगवत् में भिन्नता नहीं देखता इसलिये समदर्शी होता है, ऐसे भक्त से भगवत् कभी अप्रत्यक्ष नहीं होते और न कभी भगवत् से ऐसा भक्त अप्रत्यक्ष होता है, यह ही बात भगवान् ने गीता के छठे अध्याय में कही हैं, कि जो मुझ ईश्वर को सर्वत्र देखता है और जो सब को मुझ ईश्वर में देखता है, मैं उस से कभी नहीं छुपता और न वह कभी मुझ से छुपता है। हे मंसाराम! जैसे महाराजा आदिकों के शीश महल में जब मनुष्य जाता है तो एक ही अपने को अनेक रूप हुआ देख कर प्रसन्न होता है और जब कोई कुत्ता शीश महल में जाता है तो एक के अनेक हुये न जान कर वस्तुतः भिन्न२ कुत्ते समझ कर भौंकते२ पागल होकर मर जाता है इसी प्रकार जो भक्ति महारानी के शीश महल में हो आता है वह संसार रूप माया के शीश महल में अपने ही अनेक रूप हुये देख कर प्रमुदित होता है और जो मूर्ख भक्ति महारानी के महल में नहीं गये हैं, वे एक दूसरे को भिन्न२ समझ कर राग द्वेष करके दूसरे को पीड़ा देते हैं और स्वयं भी ईर्षा कर के क्रोध से जलते हुये कष्ट पाते हैं, यह ही बात स्वामी राम तीर्थ ने एमेरिका में कही थी कि यद्यपि

सब जीव एक भगवन् की सन्तान होने से भगवत् स्वरूप ही हैं तो माया से मोहित हुये, एक के ही अनेक हैं, ऐसा न जान कर शीश महल में घुसे हुये कुत्ते के समान एक दूसरे को देख कर भौंकते हैं और कष्ट पाते हैं, यानी सब भगवन् (God) होकर भी विपर्य्य ज्ञान से श्वान (Dog) हो गये हैं! शोक. शोक!! महा शोक!!! हे मंसाराम! यदि सब मनुष्य भक्ति महारानी का महल देखलें तो कभी भी कोई दुःखी न हो, हिन्दुओं के ब्राह्मणादि चार वर्णों की चाहे जितनी जातियां बन जांय, मुसलमानों के बहत्तर फिरकों से भी अधिक हो जांय, ईसाइयों के रोमन, कैथोलिक, फिरीमिशन, चर्च औफ इंग्लेंड आदि कितने ही चर्च बन जांय, जैनों में श्वेताम्बरी, पीताम्बरी और दिगम्बरी से भी अधिक कोई विचित्राम्बरी बन जांय तो भी किसी में कुछ झगड़ा न हो! सब का मूल भगवन् को न जानने का सब झगड़ा है! परमात्मा सब पर अनुग्रह करें और सब की आंखें खोल दें। हे मंसाराम! यह मेरी हार्दिक, उत्कट इच्छा है।

हे मंसाराम! जो भक्ति महारानी के महल को देख लेता है, उस को फिर कुछ देखना, सुनना शेष नहीं रहता, सब देश उसके देखे हुये हो जाते हैं और सब शास्त्र सुने हुये हो जाते हैं, बड़ी से बड़ी कहानी उसके लिये "फिरफुर" हो जाती है।

मंसारामः महाराज! 'फिरफुर' कैसी?

मस्तरामः-भाई मंसाराम! एक चक्रवर्ती महाराज था। उसने अपने राज्य में एक बार यह मनादी करवाई कि जो कोई मुझे ऐसी कहानी सुनावेगा कि जिस का कभी अंत ही न हो, मैं उसे अपना राज्य दे दूंगा। नहीं तो गदहे पर चढ़ा कर देश भर में घुमाऊंगा! राज्य के लोभ से बहुत से लोग आने लगे और अपनी कहानी सुनाने लगे! किसी की कहानी एक दिन में, किसी की दो दिन में किसी की सप्ताह में, किसी की पक्ष में, किसी की मास में, किसी की ऋतु में, किसी की अयन में, किसी की संवत्सर में और किसी की दो चार संवत्सर में समाप्त हो जाय, सब अपना २ मुख काला करवा कर लोकमें हंसी कराकर घर लौट जांय! एक दिन एक विद्वान ने आकर इस प्रकार कहानी आरंभ की:—महाराज! सुमेरु पर्वत से भी बड़ा एक महान पर्वत है। उस पर्वत में एक बड़ी भारी गुफा है उसमें असंख्य टिड्डियां रहती हैं, गुफा का द्वार एक टीडी मात्र निकल सके, इतना छोटा है! एक दिन गुफा का द्वार खुला और एक टीडी निकली! राजाः फिर विद्वानः-फुर! राजाः-फिर? विद्वानः-फुर! राजाः-फिर? विद्वानः—फुर! राजाः—यह क्या? विद्वानः-एक२ टिडी निकलती है! राजाः- अच्छा फिर? विद्वानः फुर! राजाः—अच्छा! समझ लिया! एक२ करके उड़ गई! आगे क्या हुआ? विद्वानः-वाह! क्या कोई बेगार टालनी है? पूरी कहानी कहूंगा! महाराज समझ गये कि यह पूरे गुरु का पढ़ाया हुआ है, इस की कहानी समाप्त न होगी! कल्पनायें अनेक उत्पन्न होती रहती हैं और समाप्त भी होती रहती हैं कल्पनाओं का अधिष्ठान ज्यों का त्यों रहता है। जो अधिष्ठान को जानता है, उस की कहानी का अंत, जब तक पूछने वाला पूछता रहेगा, नहीं आ सकता और जब पूछने वाला चुप हो जायगा तब लम्बी से लम्बी कहानी भी समाप्त हो जायगी। महाराज ने ऐसा विचार कर विद्वान को राज्य सौंप दिया और आप वन में जाकर तपस्या

करने लगे। हे मंसाराम! इसीलिये मैंने ऊपर कहा था कि भक्ति महारानी के महल को जो देख लेता है, उसके लिये बड़ी से बड़ी कहानी 'फिर फुर' हो जाती है, हे मंसाराम! लोक में जो कोई एक रुपये से लाखों का व्यापार करने लगे वह चतुर समझा जाता है और जो कोई पैसे से ही करोड़ों का व्यापार करे तो वह उस से भी बढ़ कर चतुर समझा जाता है तो जो कोई कौड़ी से चिंता मणी प्राप्त कर ले वह सब से बढ़ कर चतुर है, इसमें कहना ही क्या है! यह देह पृथ्वी तत्व का बना हुआ भस्म रूप होने से कौड़ी के समान ही है। इस देह से जो भक्ति रूप चिंता मणि को प्राप्त कर लेता है वह ही चतुर है इस लिये हे मंसाराम! धन से, ऐश्वर्य से, स्त्री से, पुत्र से, यश से, कीर्ति से, सब से मुख मोड़ कर भक्ति महारानी के शीश महल में जाकर भगवत् के दर्शन कर आओ! फिर तुम्हारे सब पाप क्षीण हो जांयगे सब दुःख मिट जांयगे! फिर तुम को बाहर का जगत कुछ बाधा न करेगा! दुःख सुख हो जायगा! शत्रु मित्र हो जांयगे! काम तुम को आराम देगा, क्रोध से प्रबोध होगा, लोभ से क्षोभ न होगा! चिंता चिंतामणि हो जायगी! रोग भी योग हो जायगा! सारांश यह है कि सर्व क्लेशों से मुक्त हो कर तुम परम शांति का अनुभव करोगे! अच्छा! ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आदि भगवत् के सखाओं को और सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती, आदि भक्ति महारानी की सहेलियों को बारम्बार नमस्कार!

शीश महल वृत्तान्त शुभ पढ़ें सुने मन लाय
भोला भगवत् की कृपा भेद बुद्धि मिट जाय

नोटः यह लेख स्वामी जी के गतांकों में प्रकाशित भगवद्भक्ति नामक लेख माला से ही सम्बन्धित है।

हरि स्मरण।

हरि को नाम सभी मिल गाओ ॥टेक॥

करो परस्पर प्रीति सब से,
भ्रातृ भाव उपजाओ ॥ १ ॥
सब ओर से मनको वश कर,
हिरदे मांहि ठहराओ ॥ २ ॥
भजन करै सो हरिको प्यारा,
भेद का भाव मिटाओ ॥३॥
परमेश्वर में चित्त लगाओ,
भक्ति भाव उपजाओ ॥ ४ ॥
अपनो रूप लखो तुम सबको,
एक रूप है जाओ ॥ ५ ॥
ओं ओं कह पानी पीवो,
ओं ओं कह खाओ ॥ ६ ॥
जब सोवो तब ओं जपो नित,
शून्य में शून्य मिलाओ ॥७॥
तेज पुञ्ज के दर्शन होंगे,
तम अज्ञान नशाओ ॥ ८ ॥
नाम और नामी एक भये तब,
ज्योति में ज्योति समाओ ॥९॥

[एक महात्मा]

उच्च उद्गार

[ले० श्री० शोभाराम जी धेनुसेवक]

तुम्हारे ही अनुग्रह से, तुम्हारा ज्ञान होता है।
शमन हो शोक तब ही जब, तुम्हारा ध्यान होता है॥

२

वहीं बसती हैं सब सम्पत्तियां, समृद्धियां निधियां।
जहां पर प्रेम युत भगवन्, तुम्हारा गान होता है॥

३

वहीं निर्वाण निर्मल के बनेंगे उच्च अधिकारी।
जहां सबसे तुम्हारी प्राप्ति के हित दान होता है॥

४

विषय सुख विश्व के नीरस, उसे होते हैं जिस जन के।
हृदय मन्दिर में मन मोहन, तुम्हारा भान होता है॥

५

तरेंगे तम अविद्या से तुम्हारे प्रेम के प्रेमी।
अगम भव सिन्धु भी उन के लिये आसान होता है॥

६

पतित पावन तुम्हारी ही दया से दीन पतितों का।
सदा को अघ अधो गति से अभय उत्थान होता है॥

७

वहीं आवास थल होंगे, विजय यश शान्त वैभव के।
जहां पर आपके आदेश का सम्मान होता है॥

८

अमरता नित्य निर्भयता, वहीं रमती जहां भगवन्।
तुम्हारे प्रेम अमृत का निरन्तर पान होता है॥

दम

[ले० हरिओं ब्रह्मचारी]

संसार में जो दुःख, दरिद्रता, अशान्ति और भ्रान्ति २ की शारीरिक व मानसिक व्याधियां दिखाई देती हैं इन सब का मूल-कारण इन्द्रिय लोलुपता है। जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों का निग्रह नहीं करता और विषयों का दमन नहीं कर सकता उसको इन्द्रपुरी का राजा और वेदशास्त्रों का सम्पूर्ण ज्ञान कभी सुखी नहीं कर सकता। सुख, शान्ति, ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति इन सब का मूल-साधन दम है और दम है "वृत्तियों के निग्रह का नाम,,। संसार के इतिहास को देखिए ऋषि, मुनि, पीर पैगम्बर, औलिया भिन्न २ संप्रदायों के चलाने वाले, महापुरुष बड़े २ राज्य के स्थापन करने वाले राजा व बादशाह सब के सब संयमी पुरुष हुए हैं और जिन आचार्यों ने अपने सम्प्रदायों को कमजोर किया है और जिन राजाओं ने अपने राज्यों को नष्ट किया है वह सब के सब इन्द्रिय लोलुप और विषयों के गुलाम हुए हैं। दूर क्यों जाओ अपने ही ग्राम या नगर में दृष्टि डालकर देखलो तुमको सहज में पता लग जायगा कि जो आदमी संयमी हैं वह सुखी हैं और जो इनके विपरीत हैं वह दुःखी हैं। तुम स्वयं अपने आपको ही देख लो तुम्हारा सुख और दुःख तुम्हारी संयम शक्ति पर निर्भर है। वर्तमान संसार के स्त्री पुरुषों की तरफ एक गहरी दृष्टि डालो और उन से पूछो भाई इस रूखे सूखे चहरे, मांस रहित पतली हड्डी वाले शरीर और अशान्त, चंचल और चिन्ताग्रस्त मनका क्या कारण है ? यदि स्वभाव में दम्भ नहीं है तो वह स्वयं उत्तर देदेगा कि यह सब खराबी इन्द्रियों के निग्रह न करने के कारण से है यदि उस के स्वभाव में दम्भ या संकोच है तो तुम स्वयं ही पहचान लोगे कि इसका एक मात्र कारण दमका अभाव है।

महाराज युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह जी से पूछा था "भगवन् ! पुरुष किस उपाय से सुखी, सिद्ध और निर्भय होता है और किस आचरण से दुःखी होता है" ? भीष्म जी कहते हैं हे युधिष्ठिर वेद के अध्ययन करने वाले और इन्द्रियों को दमन करने वाले तपस्वी सब वर्णों के लिए और विशेषकर ब्राह्मणों के लिए दमका महत्व बताते हैं"।

शास्त्र में दमको पवित्र गुण कहा है। दम तेज को बढाता है, दमके द्वारा मनुष्य पाप और भय से रहित हुआ परंपद (मोक्ष) का अधिकारी होता है, दम का साधन करने वाला धीर, गम्भीर, प्रसन्न चित्त व प्रसन्न वदन, सुख से सोने वाला, सुख से जागने वाला और सुखसे संसार में विचरने वाला होता है, दम से रजोगुण को जीता जा सकता है और दम से ही मनुष्य दिव्य दृष्टि प्राप्त कर यह जान सकता है कि कामादि विकार आत्मा से पृथक् हैं॥

मनुष्य के शरीर की रचना इस प्रकार की है कि यह प्रकृति के अत्यन्त से अत्यन्त सूक्ष्म और अत्यन्त से अत्यन्त कठिन व स्थूल परमाणुओं से बना है मनुष्य का शरीर सारे भूतों, देवताओं, वनस्पति और धातुओं का पुञ्ज है। 'पिण्डे सो

ब्रह्माण्ड' वाली कहावत सबने सुनी होगी। जो समस्त ब्रह्माण्ड में है वही सूक्ष्म तौर से हमारे इस साढ़े तीन हाथ के शरीर में है। नरक स्वर्ग, इन्द्रलोक, पितृ लोक, गंगा, यमुना, जङ्गल पहाड़ सब कुछ इसमें समाया हुआ है। अनन्त भगवान् ने जब सृष्टि की रचना की तो पहले देवताओं, भूतों और चार प्रकार की सृष्टि को बना कर सबसे पीछे इस मनुष्य शरीर को बनाया इसलिए इस शरीर की रचना में पहले बनाई हुई सब रचना आपही आगई। इस मानवी रचना के अतिरिक्त स्वयं भगवान् ने भी इस पिण्ड में वास किया। हमारे इस पिण्ड में संसार भर के खजाने समस्त प्रकार के रस और विद्युत, डायनामेट, रेडियम आदि सब शक्तिएं आप ही जमा हैं। बिजली से भी अधिक तेज चलने वाला मन है और संसार के अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थों से भी अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि का इस में वास है फिर भी हम दरिद्रि, दीन, शक्ति हीन, उदास और दुःखी क्यों है? इसका केवल एक ही कारण है कि हम इन्द्रिय दमन से शून्य है, हम में संमय नहीं है। अज्ञान वश हम अपने अमूल्य रत्नों को भर२ झोली घर से बाहर फेंकते हैं और फिर संसार के सामने चिल्लाते हैं कि हम दरिद्र और दुःखी हैं। सूर्य, वायु और जल के मालिक होते हुए भी हम अन्धे बलहीन और रूखे सूखे रहते हैं इसका एक मात्र कारण यह है कि हम संयमी नहीं हैं।

कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों का जो अपार क्षय हो रहा है उसके प्रवाह को रोक कर यदि उस शक्ति का संग्रह किया जावे तो मनुष्य की शक्ति का क्या ठिकाना है? कहते हैं "जिसने अपने आप को जीता उसने जगत् को जीता" जितना मनुष्य अपने ऊपर काबू पाने की शक्ति रखता है उतना ही यह दूसरे पर पा सकता है। आंख को संयम में रखने से मनुष्य जीवन पर्यन्त अन्धा नहीं हो सकता कारण हमारी आंख की ज्योति और सूर्य की ज्योती एक ही है। इसी प्रकार सब इन्द्रियों की बाबत समझ लेना चाहिए। बड़े २ विज्ञान विशारद तत्ववेत्ता पुरुषों की उन्नति का रहस्य इन्द्रिय दमन ही है। भगवान् की प्राप्ति का भी यही मुख्य साधन है। समस्त इन्द्रियों का निग्रह करके इस अपार शक्ति को जब भगवान् के ध्यान में लगाने का प्रयत्न जो प्राणी करेगा वही उस दिव्य ज्योति के दर्शन करने में समर्थ होगा। इन्द्रियों को मन में लय करके मन को परमात्मा में लय करेगा तो इस जीव को ब्रह्म का प्रकाश आप ही हो जायगा।

दम का साधन करने वाला पुरुष स्वयं भी अभय पद को प्राप्त करता है और दूसरों को भी अभय दान देता है। कारण संयमी होने से वह सब प्रकार के द्वन्द्वों को सहन करने में समर्थ होता है और संयमी पुरुष से किसी को भय करने की आवश्यकता इसलिए नहीं कि उससे किसी भी प्रकार की अनुचित क्रिया की सम्भावना नहीं होती। वह राज्य नियमों से भी स्वतंत्र होता है और राज्य की अवस्था की आवश्यकता भी असंयमी पुरुषों के लिए ही होती है उसके लिए नहीं जिस पुरुष ने दम का साधन किया है। महाभारत में उसके यह लक्षण बताए हैं:--

सन्तोष, कृपणता का अभाव, अद्धालुपन, आवेश तथा क्रोध न करना, सरलता, निराभिमानता मितभाषण, गुरु की सेवा, अद्रोह चुगली न करना दया, असत्य न बोलना, निन्दा स्तुति न करना, मोक्ष की इच्छा रखना, तितिक्षा और हर्ष व शोक का न

होना, निष्कंटकता, वैर का त्याग इस महान् धर्म्म को पालन करने वाला प्रेम के साथ सब का सत्कार करता है, सदाचारी. शीलवान, धीर, कामादि विचारों को जीतने वाला जगत् में सब से सत्कार पाता है और मर कर स्वर्ग की प्राप्ति करता है। दान्त पुरुष दुःख पड़ने पर खेद को नहीं प्राप्त होने वाला, बड़े भारी सरोवर की भान्ति क्षोभ न पाने वाला, वीर, प्रसन्नचित्त और सब प्राणियों से नमस्कार पाने योग्य होता है। इसलिए वेद में दम के लिए प्रार्थना की गई है:—

आयुर्यज्ञेन कल्पतां, प्राणं यज्ञेन कल्पतां, चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां, श्रोत्रं यज्ञेनकल्पतां, पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां, यज्ञो यज्ञेन कल्पतां प्रजापते प्रजा अभूम स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम (यजु)

आयु की जीवन के साथ ही कल्पना हो, प्राण की कल्पना जीवन के साथ ही हो; नेत्रों की धारणा जीवन के साथ ही हो और जीवन का अन्त भी जीवन के साथ ही हो। हम प्रजापति परमेश्वर की प्रजा बनें, स्वर्गीय भावनाओं का जीवन में प्रवेश हो, और हम अमर प्रभु की कृपा से अमृत हों। हम अपने जीवन का लाभ तब ही उठा सकते हैं जब कि हम में स्वर्गीय भावनाओं का समावेश होगा।

वर्तमान समय में संसार के सब स्त्री पुरुषों को इन्द्रियोंके के दमन करने की आवश्यकता है बिना इन्द्रिय दमन के इस लोक के प्रवाह में मनुष्यों को सुख और शान्ति की आशा कल्पना मात्र समझिए प्राचीन ऋषि मुनियों के जीवन का अनुकरण करके संयमी जीवन बनाने से शीघ्र ही सुख, समृद्धि और शान्ति की प्राप्ति हो सकती है अन्य कोई साधन नहीं है।

वह छवि

[ले. श्री. आनन्दीप्रसाद जी मिश्र 'निर्द्वन्द्व']

ललित मोहन एक कुशल-कवि और चतुर चित्रकार है। मधुरतम सौन्दर्य्य की उत्कट उपासना ही उसके जीवन की एक मात्र साधना है। प्रत्येक सुन्दर वस्तु को आंखों की राह पीजाना, उसका मनोमुग्ध कर चित्र अंकित करना, और उस पर भाव पूर्ण अनूठी कविताएं रच कर एकान्त में मन ही मन गुन गुनाते रहना-यही उसकी दिन चर्य्या है।

× × ×

कभी वह अपनी लेखनी और तूलिका लेकर रमणीय उपवन में चला जाता है। लता कुंज में बैठ कर कभी जूही और चमेली की मृदुल मंजुल कलियों का चित्र बनाता है, कभी कोमल-कान्त गुलाब की सुकुमार पत्तियों पर अपनी सरस कविता लिख कर गाते गाते झूमने लगता है। कभी मोतियों के पुष्प गुच्छ पर इन्द्र-चाप-वर्ण तितलियों का सोल्लास नृत्य देख मस्ती में चुटकियां बजा बजा कर गाया करता है।

× × ×

कभी वह प्रातः काल उन्मुक्त स्रोतस्विनी के बाल तरङ्ग-ताड़ित शीतल तट पर चला जाता है! जब स्वर्ण-कान्तिमयी ऊषा सूर्य रश्मि रंजित बहु रंगी साड़ी पहन कर गगन मण्डल की नाट्य-शाला में थिरकने लगती है, जब मृदु मन्द मलय-मारुत वन-वन डोलकर कुसुम कलिकाओं के सुरभित अंचल से समुज्ज्वल शीत बिन्दु मुक्ता दल संचित करता फिरता है, तब वह बड़ी सावधानी से मुस्कराते मुस्कराते अपनी तूलिका उठाता, और कितने ही नये नये भाव मय चित्र बना डालता है।

उसने अपने बनाये सभी चित्रों को अपने सजीले कमरे में सजा रखा है। जब हम उसकी चित्र-कुटी में जाते हैं, तब यही ज्ञात होता है- संसार सुंदर ही सुंदर है।

× × ×

शरत्पूर्णिमा के दिन धरातल और नभतल लिपट कर कौमुदी-कल्लोल में बहे जाते थे। जंगल झाड़ पर दुग्ध वर्षा होरही थी। शुभ्र चन्द्रिका के सुधा सम्पात से वनस्पतियां प्रफुल्लित हो उठीं थीं। रजनी रमण तरंगों में लुक छिप कर तारों के साथ आंख मिचौनी खेल रहे थे। ललित मोहन नदी तट पर बैठा हुआ सरिता के विमल धवल वृक्ष स्थल पर हर्षोल्लास-तरङ्गित लहरों का थेई-थेई नाच देख रहा था। वह चुप चाप तीर पर बैठ कर नदी के स्फटिकोज्वल हृदय-तल पर चन्द्र तारों की रास-क्रीड़ा न देख सका। अपने आपको भूल कर-कूद हा चन्द्रिका धवलित गम्भीर जल में! तैरता, गाता, बहलता जल केलि करता हुआ जब मझधार में पहुंचा, तब एक बार तट की ओर देखा, अपूर्व दृश्य! एक शुक्लाम्बरा, मुक्त केशी, अभिनव सुन्दरी, पैरों में मुखरित मंजीर हाथों में कंचन कलश--वह पानी भरने लगी। ललित सोचने लगा - कैसी अनोखी शोभा है, क्या सुस्पिष्ट छवि है! यह स्वर्ग दुर्लभ-मूर्ति? अहा, दृष्टान्त सौन्दर्य है! विरंचि नैपुण्य की परा काष्ठा है!

× × ×

चित्रांकण का भावोद्रेक हुआ, पर तूलिका तो तीर पर पड़ी थी, उसे लेने के लिए झट तट की ओर तैरने लगा। पर वहां पहुंचते पहुंचते वह दिव्य मूर्ति अदृश्य होगयी! बड़ी निराशा हुई।

× × ×

उस दिन के पश्चात् फिर कभी ललित की दर्शनोत्कण्ठा तृप्त न हुई। वह हृदय हारिणी न देख पड़ी। कौन थी? कहां से आयी थी, कुछ पता नहीं!

वह अब कभी किसी उपवन में, या नदी तट पर नहीं जाता। उसको तबीअत सब ओर से उचट गयी। दिन रात एकान्त में पड़ा पड़ा स्मरण करता और ये पंक्तियां गुन गुनाता!

घूमता है सम्मुख वह रूप,
सुदर्शन हुए सुदर्शन-चक्र!

× × ×

हुई मरु की मरीचिका आज,
मुझे गंगा की पावन धार!!

मुंह ही मुंह में गाते गाते उन्मत्त सा उठ कर दर्पण में अपना मुख देखते हुए शान्त भाव से कहने लगता:—

"क्या सचमुच इन्हीं आंखों ने वह चित्त चोर छवि देखी है?

पुकार

[ले० श्री० हरिकृष्णदास जी गुप्ता देहली]

प्रियतम !

अमावस्या की घोर अंधकारमयी रात्रि थी। तारा रूपी मणियें कृष्ण वर्ण मेघों की अंधेरी स्तन में छिपी हुई थी। शीत से अधिक शीतल वायु उनको लूटने के लिये मेघों को छिन्न भिन्न करने का वृथा प्रयास कर रही थी। बादलों की गड़गड़ाहट उनके सचेत रहने की सूचना दे रही थी। यदा कदा बिजली भी चमक कर वायु की अनुचित चेष्टा की झलक दर्शा दिया करती थी। ऐसे ही समय में, मैं, 'पथ' के किनारे एक पत्थर की शिला पर बैठा हुआ कातर स्वर से कह रहा था। "प्रियतम ! तुम्हें कहां ढूंढूं ! तुम कहां मिलोगे"।

तुम्हारी खोज में, मैंने त्रिलोक्य की खाक छान डाली थी। चप्पा भर स्थान भी शेष न छोड़ा था। जिस २ स्थान पर तुम से मिलन की सम्भावना थी वहां और जिस २ स्थान पर असम्भावना थी वहां भी, मैंने दोनों ही जगह तुम्हें तलाश किया था। कल्पना के अंतर्गत एवं कल्पना से परे, जितने भी स्थान थे, सब ही को मैंने तुम्हारे दर्शन की आशा पर, निज चरणों का भार सहने का कष्ट दिया था परन्तु पर पीड़ा पाप के सिवाय कुछ हाथ न आया था। तुम्हारे दर्शनों की आशा छद्म वेष धारण किये निराशा मात्र सिद्ध हुई थी। कोई स्थान भी मुझे ऐसा न मिला था, जिसके मिलने पर मुझे इन शब्दों का विद्रोह सहनीय हो जावे "प्रियतम ! तुम्हें कहां ढूंढूं ! तुम कहां मिलोगे" ?

तुम्हें खोजते २, तुम्हें तलाश करते २ मुझे पलों, घड़ियों, दिनों, वर्षों, नहीं नहीं, युगों बीत गये थे। अनगिनत बरसातें, शीत ऋतु की शीतल २ लम्बी रातें, ग्रीष्म की तीक्ष्ण झुलस देने वाली धूपकी घातें, गुजर चुकी थी परन्तु मुझ हतभाग्य के लिये कोई समय, कोई काल ऐसा न आया था जिसमें हर्ष के नशे ने प्रसन्नता की मस्ती ने मुझे यह शब्द भुला दिये हों "प्रियतम ! तुम्हें कहां ढूंढूं तुम कहां मिलोगे"।

तुम्हें ढूंढते २, तुम्हें खोजते २, तुम्हारी तलाश में फिरते २, तुम्हारे दर्शनों के लिये दर २ की खाक छानते हुए, तुम्हारी सुन्दर छवि की झलक को झलकने के लिये निरन्तर खोज पथ पर दौड़ता २ मैं थकान से चूर २ हो गया था, असीम क्लान्त हो गया था, अंग प्रत्यंग शिथिल हो गये थे। शरीर स्वेद में डूब गया था, पांव मार्ग कण्टकादि से छिद २ कर छलनी हो गये थे। स्वेद तथा धूल ने गृह बना कर तन पर कीचकी तह जमा दी थी। मैं थकान से हांप गया था। मुझ में पग उठाने की सामर्थ्य शेष न रही थी, अतएव विवश हो कर मुझे रुक जाना पड़ा शिला पर धप्प से बैठ जाना पड़ा।

शरीर के सब अंग थक कर चूर २ हो गये थे परन्तु जिह्वा में अब भी बल था। ऐसा प्रतीत होता था मानो समस्त शरीर का शेष बल-बचा बचाया बल इस छोटी सी जिह्वा में समा गया है। जिह्वा मास की छोटी से पोट जिह्वा अब भी धीमें कातर स्वर में-

विनय भरी आवाज में पुकार रही थी "प्रियतम! तुम्हें कहां ढूंढूं ? तुम कहां मिलोगे !

हां तो उस अमावस्या की प्रकाश रहित रात्रि में, शीतल हवा के तेज झोंकों की झपेट में, मैं उस निर्जन स्थान में, उस शीतल शिला पर बैठा हुआ अपने भाग्य पर झींक रहा था। नेत्र प्यालों में से अश्रु बूंदें टपक २ कर कपोलों को पार कर २ के मम पाद पृथिवी पर जल वर्षा कर रही थी। मेरे हृदय पर निराशा आधिपत्य जमाये बैठी थी वह निराशा उस अंध्यारी रात से भी अधिक अंधकार-मयी थी। उस निराशांधकार ने, मम हृदय को घोर तम से आच्छादित किया हुआ था।

जिस प्रकार कृष्ण वर्ण मेघों से आच्छादित आकाश में कभी २ बिजली चमक उठती थी उसी प्रकार मेरे हृदय में छाये हुए, निराशांधकार में भी यदा कदा आशा प्रदीप टिमटिमा उठता था जिसके प्रकाश में मेरी थकी हुई कातर जिह्वा भी धीमे स्वर में पुकार उठती थी "प्रियतम ! तुम्हें कहां ढूंढूं ? तुम कहां मिलोगे !

तुम्हारी छवि को झलकने के लिये मैं बिलबिला रहा था। तुम्हारी रसीली झांकी से प्यासे नेत्रों की प्यास बुझाने के लिये मैं छटपटा रहा था। तुम्हारे सुन्दर सलोने मुखड़े को निरखने के लिये मैं तड़फड़ा रहा था। तुम्हारे दर्शनों की झलक ने मुझे बिलखा रक्खा था इस बिलबिलाने में, इस छटपटाने में इस तड़पने में, इस बिलखने में थोड़ी २ देर के पश्चात् मेरी जिह्वा बारम्बार निराशा पूर्ण स्वर में पुकार उठती थी "प्रियतम ! तुम्हें कहां ढूंढूं ? तुम कहां मिलोगे"?

शनैः २ धीरे २ छटपटाना बिलबिलाना बिलखना तड़फना सब ही कुछ शांत हो गया। हां अश्रु प्रवाह उसी प्रकार जारी रहा। अश्रु ऐसे उमड़ २ कर आते रहे जैसे सावन की काली घटा ! मेघों में, मुझे अश्रु बहाते देख कर सहानुभूति का भाव उमड़ा। उन्हों ने मेरे साथ सहयोग करने के निमित रोना आरम्भ कर दिया। उनके रोने का स्वर क्रमशः बढता गया यहां तक कि चारों ओर व्याप्त हो गया देखते ही देखते पृथिवी उनके अश्रुओं से छा गई। बादलों की गड़गड़ाहट में, मेघों की घोर गर्जना में मेरी जिह्वा दबे हुए कण्ठ से, सहमे हुए स्वर से कभी २ पुकार उठती थी "प्रियतम ! तुम्हें कहां ढूंढूं ! तुम कहां मिलोगे"?

बिजुली कड़क रही थी ! बादल गर्ज रहे थे। बूंदों की झड़ी लगी हुई थी विचित्रि समय था। ऐसे कोलाहल पूर्ण समय में, बिना इस बात को जानते हुए की प्रियतम सुन रहा है वा नहीं, मेरी जिह्वा से यह निष्ठुर से निष्ठुर को पिघला देने वाले करुण शब्द निकल रहे थे "प्रियतम ! तुम्हें कहां ढूंढूं ! तुम कहां मिलोगे"?

बिजली का कड़कना बन्द हो गया। बादलों की गड़गड़ाहट जाती रही। बून्दों की झड़ी समाप्त हो गई। मेरा अश्रु कोष भी खाली हो चला, परन्तु जिह्वा से बहुत ही धीमी आवाज में अब भी यह शब्द निकल रहे थे "प्रियतम तुम्हें कहां ढूंढूं ! तुम कहां मिलोगे"?

पुकारते२ गला सूख गया होटों पर पपड़ी बंध गई, जिह्वा का बल समाप्त हो चला परन्तु न मालूम किस आशा के बल पर वह अभी तक इन शब्दों को

फेंके जाती थी 'प्रियतम तुम्हें कहां ढूंढूं ? तुम कहां मिलोगे" ?

जिह्वा का बल समाप्त हो गया आवाज मध्यम होते २ यहां तक धीमी हो गई कि मुझे स्वयं भी सुनने से वंचित रहना पड़ा। ऐसी अवस्था में भी न मालुम किन कानों में प्रवेश कराने के लिये वह इन कातर विनय भरे शब्दों को उच्चार रही थी "प्रियतम ! तुम्हें कहां ढूंढूं ? तुम कहां मिलोगे ?

कलि सन्तरणोपाय

[ले० श्री० प्रभुदत्त ब्रह्मचारी]

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा

परम कृपालु प्रभु के नाम को ही हम धर्म शास्त्रों में कलि सन्तरण का मुख्य साधन माना है। अनेक जन्मान्तरों से असार अथाह संसार सागर की वीचि-विक्षोभ लहरों) से विह्वल हुवा नटवत् अनेकों रूपान्तरों को प्राप्त होता हुवा विकाश की अभिलाषा वाला जीव अनेक जन्मातरों के पुण्यों के संयोग से तथा उस परम दयालु प्रभु की कृपा से परमोत्कृष्ट मानुष देह रूप अमोल रत्न को प्राप्त होता है। तुलसीदास जी कहते हैं:

नर तनु सम नहिं कवनिऊ देही,
जीव चराचर यावत जेही ।

और भी कहा है:--

गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे
स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूते,
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

देवता गान करते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं जो भारत माता पर स्वर्ग और मुक्ति के हेतु पुरुषत्व को प्राप्त करते हैं। यथा:-

शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधम्
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी,
ज्ञान विराग मुक्ति सुख देनी।

यह देह नरक, स्वर्ग, मुक्ति की निसेनी तथा ज्ञान, विराग और मुक्ति सुख देने वाली है। इस देही को प्राप्त करके भी प्राणी विषय वासनाओं के प्रलोभनों से आकृष्ट हुवा इस अथाह पयोधि की लहरों में तथा मृगतृष्णावत् अनित्य सांसारिक विषयों में सुख की कामना से भटकता फिरता है। परन्तु वास्तव में भगवन्नाम ही उस को सत्यमार्ग का दिग्दर्शन करा सकता है। और इस राम नाम की नौका में बैठ कर ही यह जीव अपने आश्रय भगवान् को प्राप्त हो सकता है। इस से सरल अन्य उपाय दृष्टि गोचर नहीं होता क्योंकि **कलौ केशव कीर्त्तनात्** कलियुग में

तो भगवन्नाम के कीर्तन से ही मनुष्य परम धाम को पा सकता है।

सतयुग में भगवान् के ध्यान से त्रेता में यज्ञों से द्वापर में सेवा से जो फल मिलता है वह कलियुग में भगवन्नाम कीर्तन से मिलता है। तदपि मनुष्य देह प्राप्त करके भी जो नर उस प्रभु के नाम का स्मरण नहीं करते वे बड़े अभागे हैं जैसा कि तुलसीदास जी रामायण में कहते हैं:--

सो तनु धर हरि भजहिं न जे नर,
होहिं विषय रत मन्द मन्द नर।
कंचन कांच बदल शठ लेहीं,
करते डारि परसि मनि देहीं।

इस अमूल्य देह रूपी मणि को पाकर जो नर भगवन्नाम का स्मरण नहीं करते वह महामूर्ख हैं तथा वे मूढ़ पुरुष सुवर्ण के बदले कांच लेते हैं तथा मणी को छू कर ही डार देते हैं। भगवान् के नाम असंख्य और एक से एक परमोत्कृष्ट हैं। तदपि राम नाम सब का आत्मा रूप है। जैसा शंकर भगवान् ने पार्वतीजी से कहा है:-

परमेश्वर नामानिसत्यनेकानि पार्वती।
परन्तु रामनामेदं सर्वेषामुत्तमोत्तमम्॥
नारायणादि नामानिकीर्त्तितानि बहून्यपि।
आत्मा तेषां तु सर्वेषां राम नाम प्रकाशकः

हे पार्वती! परमेश्वर के अनेक नाम हैं परन्तु राम नाम सब से उत्तमोत्तम है। नारायणादि अनेक नाम कीर्तित हैं उन सब का प्रकाशक आत्मा राम नाम है।

महा मन्त्र जोई जपत महेशू,
काशीमुक्ति हेतु उपदेशू।

महादेव भगवान से कहते हैं:-

अहो भगवन्नाम जपन् कृतार्थो,
वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं,
दिशामि मन्त्रं तव राम नाम॥

मैं आप का नाम जपता हुआ पार्वती सहित काशी में रहता हूं और मरते हुये प्राणी की मुक्ति के लिये मैं तुम्हारे राम नाम मन्त्र का उपदेश करता हूं। उस राम नाम के प्रभाव को गणेश जी भी जानते हैं जो कि प्रथम पूज्य हैं।

एक बार ब्रह्माजी ने सब देवताओं से पूछा कि सब से प्रथम पूजनीय कौन है। ये सुन कर देवता परस्पर तर्क करने लगे। तब ब्रह्माजी बोले कि जो पृथ्वी की प्रथम प्रदक्षिणा कर आवेगा वह प्रथम पूज्य होगा। तब तो सब देवतागण अपने २ वाहनों पर आरूढ़ होकर चले। गणेश जी भी चूहे पर आरूढ़ होकर चले। चूहे की गति मन्द होती है, अतः पीछे रह गये और मन में दुःखी होने लगे तब उनको नारदजी मिले और कहने लगे कि पृथ्वी में राम नाम लिख कर प्रदक्षिणा करके पितामह के पास जाओ। निदान गणेश जी ने ऐसा ही किया और प्रथम पूजनीय पद पाया जो वर्त्तमान में भी कार्यारम्भ में पूजे जाते हैं। यह राम नाम का ही प्रत्यक्ष प्रमाण है। और भी देखिये:-

उलटा नाम जपत जग जाना,
वाल्मीक भये ब्रह्म समाना।

आदि कवि वाल्मीकि उलटे नाम के जप से ही ब्रह्म ज्ञानी हुये। भक्त शिरोमणी हनुमान जी ने अपने अंग २ में राम नामांकित दिखाया था। राम नाम के प्रभाव से ही अग्नि में से निर्लेप निकल कर प्रहाद जी अपने पिता से कहते हैं कि:-

राम नाम जपतां कुतो भयम्,
सर्व ताप शमनैकभेषजम्।
पश्य तात मम गात्र सन्निधौ,
पावकोपि सलिलायतेऽधुना॥

हे पिताजी! राम नाम जपने वालों को भय कहां राम नाम सब तापों को नाश करनेवाली संजीवनी है। मेरे शरीर के निकट देखो अग्नि भी शीतल हो गयी है। विष्णु पुराण में लिखा है:-

अविकारी विकारी वा,
सर्व दोषैक भाजनः।
परमेश पदं याति,
राम नामानुकीर्त्तनात्॥

विकार रहित या विकारी समस्त दोष भाजन भी राम नाम के कीर्त्तन से परम पद को प्राप्त होता है। पद्म पुराण में लिखा है:-

न तत्पुराणो नहि यत्र रामो,
यस्यां न रामो न च संहिता सा।
स नेतिहासो नहि यत्र रामः,
काव्यं न तत्स्यान्नहि यत् रामः॥

वह पुराण नहीं जिसमें राम न हो। वह संहिता नहीं जिसमें राम नाम न हो, वह इतिहास नहीं जिस में रामनाम न हो, वह काव्य नहीं जिस में राम नाम नहो।

तुलसी दास जी ने राम नाम की महिमा इस प्रकार वर्णन की है। यथा:-

तुलसी र के कहत ही निकसत पाप पहार
फिर आवन पावत नहीं देत मकार किवार

र के उच्चारण से पापों का समूह निकलता है और पुनः पाप न आने के लिये मकार किवाड़ लग जाता है। नाम की बड़ी महिमा है। सारांश यह है कि जिस प्रकार सेवक स्वामी के आधीन होता है ऐसे ही नामी भी नाम के आधीन होता है। नाम भी नामी के आधीन है। अर्थात् जब किसी का नाम लोगे तो वह आजायगा।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्

जैसे किसी को कोई लाल रत्न मिला उस ने रूप तो देख लिया कि लाल है परन्तु ज्ञान नहीं हुवा कि यह क्या है। जब किसी ने नाम बतलाया कि यह मणिक है तब उसको ज्ञान हुवा कि यह अमूल्य रत्न है। अतएव नाम बिना रूप का ज्ञान नहीं होता भगवान् कहते हैं कि:-

गीत्वा तु मम नामानि नर्त्तयेत्मम सन्निधौ
इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन

हे अर्जुन! जो मेरे नामों को गान करता हुवा मेरे सामने नाचता है मैं सत्य कहता हूं कि उस ने मुझे खरीद लिया है।

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमरि २ भव उतरहिं पारा॥

अजामिल ने मरण समय राम नाम पुकारा तिन को निज गति प्रदान की। ग्राह ने जौ तर सूंड बाहर रही तब हरि नाम आधा ही ले सके थे कि गरुड़ छोड़ दौड़े आये पांच वर्ष की आयु में ही भक्त ध्रुवजी ने हरि नाम जपकर भगवान् के दर्शन पाये और अटल पदवी पायी। यह नाम का ही परम प्रताप है।

राम नाम्नः समुत्पन्नो प्रणवोमोक्षदायकः।

राम नाम से उत्पन्न ओंकार मोक्ष का दाता है। गीता में कहा है कि:-

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म, व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं, स याति परमां गतिम्॥

जो ओं इस एकाक्षर ब्रह्म का ध्यान करता हुवा मुझ को स्मरण कर देह छोड़ता है वह परम गति को पाता है और भी गीता में कहा है:-

यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि

यज्ञों में नाम का जप करना रूप यज्ञ मैं ही हूं। अतः नाम की महामहिमा है जितनी गाई जाय उतनी थोड़ी है। क्योंकि:-

राम न सकै नाम गुण गाई

फिर मेरे समान अल्पज्ञ क्या गा सकते हैं। मेरी तो श्री चरणों में नत मस्तक और कर जोड़ कर केवल यही प्रार्थना है वह सर्वज्ञ सकल जगत् नियन्ता, सर्वान्तर्यामी प्रभु हम सबको अपनी नाम रूपी भक्ति से विभूषित करके स्वधाम भागी करें और हमको इस संसार से पार करने की कृपा करें।

श्रीमद्भगवद्गीता

ले० श्री० पूज्य महादेवप्रसाद सरस्वती]

गतांक से आगे

अर्जुन उवाच

केहि कहत स्थित प्रज्ञ केशव ! समाधिस्थ किंमे कहैं।
केहि भांति स्थित प्रज्ञ बोलत चलत किम बैठत अहै

श्रीभगवानुवाच

हे पार्थ ! मन की वासना सब मनुज जब ही तजत है
सन्तुष्ट अपने आप स्थित प्रज्ञ ताको कहत हैं ॥६२
सुख में नहीं आसक्त जो दुःख में नहीं घबड़ावई।
प्रीति भय नहीं क्रोध जाके धीर बुद्धि कहावई ॥६४।
शुभाशुभ जो प्राप्त हो उर हर्ष शोक न लावई
निरसंग मन सब बात में सो धीर बुद्धि कहावई ॥६५
कूर्म लेत सिकोड़ अपने अंग जिमि चहुं ओर से।
इन्द्रिय विषय से इन्द्रियां तिमि, धीर बुद्धि बनत ते ॥
निराहारी पुरुष के छूटत विषय नहीं चाहना।
ब्रह्म अनुभव से अरु चाह दोनों रहत ना ॥ ६७ ॥
पंडित जनन के यत्न करत हुए प्रबल इन्द्री महा।
तिनके मनहिं ले जात बरबस खैंचि जित चाहत तहां॥
योग युत इन्द्रियन संयम मत्परायण ह्वै रहै।
करहिं इन्द्रिय सकल निज वश धीर बुद्धि तिमे कहैं॥
विषय चिन्तन करन हारेहिं विषय संग करावई।
संग से ही काम उपजत काम रिस उपजावई ॥ ७९

क्रोध से अविवेक है अविवेक स्मृति भ्रम करा।
भ्रंश स्मृति बुद्धि नाशक बुद्धि बिन सर्वस हरा ॥७१॥
जासु अन्तः करण निज वश सो सुखी चित सर्वदा।
राग द्वेष विमुक्त इन्द्रिय विषय वर्तत है सदा ॥ ७२॥
जासु चित प्रसन्न ताके दुःख समस्त नशावई।
रहे चित्त प्रसन्न बुद्धि हु तुरत स्थिता पावई ॥ ७३ ॥
योग युक्त विहीन नर में रहत बुद्धि न भावना।
भावना बिन शांति नाहीं शांति बिन सुख होत ना ॥
व्यवहार वर्तत इन्द्रियों के मनुज पीछे जात है।
हरत बुद्धि हि नाव जल में पवन जिमि लै जात है ॥
चहुं ओर से इन्द्रियां अपनो विषय जु हटावई।
महाबाहु ! पुनीत सो नर धीर बुद्धि कहावई ॥७६॥
जेहि रात में सब लोग सोवत संयमी तहं जागई।
जागते जब लोग सब सो रात ज्ञानिहिं लागई ॥७७॥
चहुं ओर पूरित सलिल से मर्याद जासु न जात है।
जेहि भांति ऐसे उदधि में पानी सबै यहि जात है ॥
तेहि भांति विषय समस्त जेहि नर में प्रवेश करावहीं
शांति पावत अवशि सो कामी मनुज नहिं पावई ॥
आसक्ति तजि व्यवहार वर्तत जाहि कुछ स्पृहा नहीं।
अहंकार ममत्व नहिं जेहि शांति सो पावत सही ।८०
पार्थ ! ब्राह्मी गति यहि है पाय मोहन आवई।
मरत यह स्थिति रहे निर्वाण ब्रह्महि पावई ॥ ८१ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे सांख्य
योगो नाम द्वितीयोऽध्यायः।

जिज्ञासु कर्तव्य

[ले० श्री० महात्मा राम]

नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्द मूर्तये
निश्प्रपंचाय शान्ताय निरालंबाय तेजसे

अनेक जन्म पर्यंत निष्काम कर्म तथा परमेश्वर की उपासना द्वारा मल विक्षेपादि दोष तथा काम, क्रोध, राग द्वेषादि सब, जिसके निवृत्त होगये हैं ऐसा शुद्ध अंतःकरण वाला उत्तम अधिकारी पुरुष अपने कल्याण के लिये सत्पुरुषों का संग करता हुवा भगवान् की अनन्य भक्ति को दृढ आश्रय कर के शान्ति आदि दैवी संपत्ति के सद्गुणों को धारण करने वाला कर्मसाध्य लोक और उन कर्मों की इच्छा को त्याग कर परमार्थ दर्शी तत्वज्ञ ब्रह्मपरायण, दयालु सद्गुरु को प्राप्त होकर यथा विधि श्रद्धा भक्ति पूर्वक आलस्यादि प्रमाद को त्याग कर, नित्य प्रति उन सद्गुरु के चरण कमलों की सेवा करता हुवा परम पुरुष परमात्मा अक्षर ब्रह्म के जानने की जिज्ञासा वाला सद्गुरु के प्रसाद से वेद के तत्वमस्यादि महावाक्यों के अर्थ को षड्लिंगों द्वारा श्रवण करे। जिन युक्तियों से वैदिक वाक्यों के अर्थ का निश्चय कराया जावे उन युक्तियों को षड्लिंग कहते हैं उनको यहां सामान्य तया दिखलाते हैं।

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्
अर्थवादोपपत्तिश्च लिंगं तात्पर्य निर्णये

उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद, उपपत्ति ये षड्लिंग वैदिक वाक्यों के तात्पर्य को निश्चय कराने वाले हैं इस लिये इन षड्लिंगों को समझने की आवश्यकता है। प्रकरण करके प्रतिपादन की हुई जो अद्वितीय ब्रह्म रूप वस्तु है उस वस्तु को प्रकरण के आदि में तथा अंत में प्रतिपादन करने को उपक्रम उपसंहार कहते हैं प्रकरण के आदि में प्रतिपादन करने को उपक्रम कहते हैं और अन्त में प्रतिपादन करने को उपसंहार कहते हैं। ये दोनों मिल कर एक लिंग हो जाते हैं जैसे छान्दोग्य उपनिषद् के छठे अध्याय में उद्दालक ऋषि ने श्वेतकेतु के प्रति उपदेश करते हुये प्रकरण के आदि में यह कहा है:-

सदेव सोम्येदमाग्रासीदेकमेवाद्वितीयं

उद्दालक ने श्वेतकेतु से कहा कि हे श्वेतकेतु! यह दृश्यमान जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व सत् ब्रह्मरूप ही था। और अन्त में (एतदात्म्यमिदं सर्वम्) हे प्रिय श्वेतकेतु! यह दृश्यमान्सर्व जगत् इस सदद्वितीय आत्मा वाला है अर्थात् यह जगत् सत्य स्वरूप परब्रह्म का कार्य होने से ब्रह्म रूप ही है यह कहा है। यहां प्रकरण के आदि अंत में एक ही वस्तु को दिखलाया है इस लिये इस को एक लिङ्ग कहा गया है। लिङ्ग साधन को कहते हैं ये भी ज्ञान का साधन है इस लिये लिङ्ग कहे जाते हैं। उसी प्रकरण के आदि अन्त में कही हुई वस्तु को उस प्रकरण के मध्य में पुनः पुनः प्रतिपादन करने को अभ्यास कहते हैं। जैसे:-"तत्त्वमसि श्वेतकेतो" हे श्वेतकेतु! जिस सत्य वस्तु को हमने जगत् की उत्पत्ति से पूर्व कहा था तथा इस जगत् को इसी सत्य आत्मा वाला कहा था वह सत्यात्मा ही तत्पद् का लक्ष्य अर्थ तेरा स्वरूप है यहनिश्चय कर। इस प्रकार के अर्थ वाले 'तत्त्वमसि' महावाक्य को उसी प्रकरण के मध्य में नव वार कथन किया है। इस लिये यह अभ्यास रूप दूसरा लिङ्ग कहा जाता है। प्रकरण में कहे हुये ब्रह्म के जानने के लिये जो श्रुति प्रमाण से भिन्न प्रत्यक्षादि प्रमाणों की अविषयता है यह अपूर्वता कही जाती है। जैसे:-

यं वै सोम्यैतमणिमानं न निभालयसे

हे सोम्य! अणिमा अर्थात् आत्मा के सूक्ष्म स्वरूप को नेत्रादि प्रत्यक्ष प्रमाणों से नहीं देख सकते क्योंकि ये नेत्र आदिक इन्द्रियां बाह्य स्थूल पदार्थों को विषय करते हैं। जो सर्वान्तर्यामी, अति सूक्ष्म आत्मा है, उसे जानने में असमर्थ हैं। प्रकरण प्रतिपादित ब्रह्म के ज्ञान से जो परम प्रयोजन की प्राप्ति है वह फल कहा है। जैसे श्रुति में कहा है:-

आचार्यवान्पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये।

जिस अधिकारी पुरुष ने ब्रह्म वेत्ता आचार्य की विधिवत् सेवा शुश्रुषा तथा भक्ति करके शिक्षा प्राप्त की है वह ही इस दुर्विज्ञेय आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जानता है और उस तत्ववेत्ता पुरुष की शरीरादिक उपाधि उतने ही समय तक है जितने समय तक प्रारब्ध कर्म को अपना भोग देता रहा है। पश्चात् ब्रह्मरूपता को ही प्राप्त होता है। तथा च:-

ब्रह्म विदुब्रह्मैव भवति,
न तस्य प्राणा उत्क्रमन्ते।

ब्रह्म के जानने वाला ब्रह्म रूप ही होता है।

उसके प्राण परलोक को गमन नहीं करते हैं।

गताः कलाः पंच दशप्रतिष्ठा

उसके देह पात होने पर पंच कर्मेन्द्रिय, पंच ज्ञानेन्द्रिय तथा पंच प्राणादि सर्व कलायें अपने २ कारण में लय हो जाती हैं। जैसे चलन स्वाभाव वाली गंगादिक नदियां दिशा विदिशाओं से बहती हुई अपने गंगादि नाम रूप को परित्याग कर अगम, जल से पूर्ण, अपने निधि समुद्र को प्राप्त होकर विलीन हो जाती हैं तैसे यह पुरुष भी सर्व कलाओं बुद्धि आदि नाम रूपात्मक उपाधियों को त्याग कर

"परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्"

माया अविद्यादि से परे दिव्य (प्रकाशमय) पुरुष को प्राप्त होती है। प्रकरण प्रतिपादित ब्रह्म रूप वस्तु की स्तुति रूप जो प्रशंसा करना है उसे अर्थवाद कहते हैं जैसे–

येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति।

जिस एक वस्तु के सुनने से जो नहीं सुनी वस्तु है वह भी सुनी हुई हो जाती है। जिस एक वस्तु के मनन करने से जिन दूसरी वस्तुओं को नहीं मनन किया है वह भी मनन की हुईहो जाती है तथा जिस एक वस्तु के जानने से दूसरी अज्ञात वस्तुयें भी जानी जाती हैं। एक बार शौनक नाम वाले ऋषि ने अंगिरा ऋषि से यह प्रश्न किया है।

कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति।

हे भगवन! किसके जानने पर यह सब कुछ जाना जाता है। प्रकरण में प्रतिपादन की हुई वस्तु को अनेक युक्ति और दृष्टान्तों से प्रतिपादन करने को उपपत्ति कहते हैं जैसे:–

यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।

हे सोम्य! जैसे एक मिट्टी के पिण्ड को जानने वाला पुरुष यावत मिट्टी के कार्य हैं उन सब पदार्थों को मृतिका रूप ही जानता है क्योंकि उन कार्यों से यदि कारण रूप मृतिका पृथक् किया जावे तो कुछ शेष नहीं रहता। इस अन्वय व्यतिरेक युक्ति से वह कार्य कारण रूप ही जाना जाता है। कारण की अपने कार्य में सर्वथा स्थिति को अन्वय कहते हैं और कारण को कार्य से पृथक् करने पर कार्य के अभाव को व्यतिरेक कहते हैं। इस अन्वय व्यतिरेक युक्तियों से विचार करने को अनेक दृष्टान्तों का कथन करते हुवे जो इस प्रकरण में से प्रतिपादित वस्तु की स्तुति है यह अर्थवाद कहा है। इस प्रकार उपरोक्त षड्लिङ्गों द्वारा जिस परम अर्थ को जिसने श्रीगुरुदेव के मुखारविन्द से श्रवण किया है वह पवित्रात्मा गुरु सेवा करता हुवा अपने कल्याण के लिये गुरूपदिष्ट अर्थ को दृढ़ीभूत करने को बहिर्मुखी लोगों से वार्तालाप न करके श्रवण किये हुवे अर्थ के अनुकूल अनेक युक्तियों से मनन करे।

श्रुतस्यार्थस्योपपत्तिभिश्चिन्तनं मननम्।

वेद के तत्वमस्यादि महावाक्यों के श्रवण किये

हुवे अर्थ की श्रुति अनुकूल युक्तियों से चिन्तन करने को मनन कहते हैं। और

विजातीय प्रत्यय तिरस्कारेण सजातीय प्रत्यय प्रवाही करणं निदिध्यासनम् ॥

विजातीय प्रत्यय (वृत्ति) को निरोध करके सजातीय वृत्तियों के प्रवाह करने को निदिध्यासन कहते हैं। देहादि अनात्म पदार्थों में आत्मबुद्धि होने को विजातीय प्रत्यय कहते हैं और जिस अर्थ को गुरु द्वारा श्रवण किया है उसके आकार ही वृत्तियों के उत्पन्न होने को सजातीय कहते हैं। प्रमाता प्रमाण तथा प्रमेय गत संशयों की निवृत्त के लिये श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन का विधान किया गया है। यहां वेद को ईश्वरीय ज्ञान रूप होने से प्रमाण कहा है और उस ज्ञान से जिस वस्तु को जाना जाता है उसको प्रमेय कहते हैं। और वेद रूप प्रमाण द्वारा जिसने प्रमेय वस्तु को जाना है उस जानने वाले को प्रमाता कहते हैं। अहंकारादि इन्द्रियों के संघात रूप इस अनात्मा शरीर में आत्मबुद्धि करके शरीर संबन्धी स्त्री, पुत्र, धनादि पदार्थों के हानि लाभ से अपनी हानि लाभ समझता है तथा शरीरवर्ती सुख, दुःख, काम, क्रोधादि धर्मों को अपने मान कर आसक्त होता है यह विपरीत भावना रूप प्रमाता गत संशय कहलाती है। निरन्तर निदिध्यासन द्वारा इस संशय की निवृत्ति होती है। प्रमेय गत संशय यह है के तत्पद के अर्थ रूप ब्रह्म का तथा त्वं पद के अर्थ रूप आत्मा का भेद है अथवा अभेद है और यदि अभेद है तो परस्पर विरुद्ध गुण स्वभाव वाले दो पदार्थों का अभेद कैसे हो सक्ता है ऐसे अनेक संशयों की निवृत्ति गुरूपदिष्ट अर्थ को बारंबार मनन करने से होती है और वेद में जीवात्मा का तथा परमात्मा का भेद निरुपण किया है, अथवा अभेद इस प्रमाणगत संशय की निवृत्ति षड्लिङ्गों द्वारा वेदान्त के अर्थ का श्रवण करने से होती है। इस प्रकार मनन निदिध्यासनादि अङ्गों सहित श्रवण करके जिसने सर्व संशय निवृत्त किये हैं ऐसे उत्तम अधिकारी गुरु भक्त को पूर्वोक्त गुरूपदिष्ट अर्थ का साक्षात् अपरोक्ष ज्ञान होता है। उस अपरोक्ष ज्ञान से अज्ञान और तत्कार्य जाल की निवृत्ति होकर परमानन्द परम पद की प्राप्ति रूप मुक्ति की प्राप्ति होती है। यह बातें गीता में भी कही है।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्ति,
मचिरेणाधि गच्छति। तथा
ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्य वज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥

ऐसे गुरु कृपा से प्राप्त हुवे ज्ञान द्वारा जिसका अज्ञान नष्ट हुवा है उसके हृदयाकाश में परम पुरुष परमात्मा का सूर्य के समान प्रकाश होता है।

भक्ति मार्ग।

[ले० श्री० मनोरमादेवी मथुरा]

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः

(गीता १८-६६)

सब प्रकार के धर्मों की प्राप्ति के साधनों को छोड़ मेरी शरण में आ, मैं तुझे पापोंसे मुक्त कर

दूंगा।

अव्यक्तोपासना (ज्ञान मार्ग) और व्यक्तोपासना भक्ति मार्ग ये दो साधन अत्यन्त प्राचीन समय से चले आ रहे हैं गीता में केवल इतना कहा है कि इन दोनों में अव्यक्तोपासना क्लेशमय - अत्यन्त कष्टमय और दुःखप्रद है और व्यक्तोपासना या भक्ति अधिक सुलभ है। ईश्वर के रूप के अनुभवात्मक ज्ञान के लिए सब प्राणियों में एक परमेश्वर ही है। वह निर्गुण, अज्ञेय और अव्यक्त है। जब ज्ञान हो जाता है तब उपास्य और उपासक रूपी भेद भाव नष्ट हो जाता है यह उपासना का अन्तिम साध्य है। उपासना का प्रारम्भ यहां से नहीं किन्तु उसका प्रारम्भ भक्ति से ही है। भगवान श्री कृष्ण ने व्यक्त स्वरूप बतलाने के पहिले गीता में कहा है।

राज विद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥

अर्थात् यह भक्ति मार्ग सर्व विद्याओं में श्रेष्ठ है। यह उत्तम पवित्र देख पड़ने वाला धर्मानुकूल सुख से आचरण करने योग्य और अक्षय है।

इस में कोई सन्देह नहीं कि किसी तत्व को ध्यान में लाने से पहिले केवल श्रद्धा की ही सहायता से चलना पड़ता है। इसके सिवाय यह भी ध्यान रखना चाहिये कि संसार के समस्त व्यवहार श्रद्धा प्रेम आदि नैसर्गिक मनोवृत्तियों से ही चलते हैं। इन वृत्तियों को रोकने के सिवाय बुद्धि कोई दूसरा कार्य नहीं करती और जब बुद्धि किसी बात का कोई निश्चय कर लेती है तब निश्चित निश्चय का प्रयोग मनोवृत्ति द्वारा होता है। सारांश केवल यह है कि बुद्धिगम्य ज्ञान की पूर्ति होने के लिए ज्ञान को सदैव श्रद्धा, दया, वात्सल्य, कर्तव्य प्रेम, इत्यादि नैसर्गिक मनोवृत्तियों की आवश्यकता है और जो ज्ञान मनोवृत्तियों को जाग्रत शुद्ध नहीं करता और जिस ज्ञान को उनकी सहायता अपेक्षित नहीं उसे रूखा, कोरा, कर्कश, अधूरा समझना चाहिए।

इसीलिए देह स्वभाव को ब्रह्मात्मैक्य बुद्धि बनाने के लिए परमेश्वर के स्वरूप का प्रेमपूर्वक चिन्तन करके मन को तदाकार करने के लिए भक्ति सुगम साधन है। ईश्वर पर अत्यन्त प्रेम करना ही भक्ति है किन्तु वह प्रेम अहेतुक निष्काम और निरन्तर हो, अन्यथा राजस होगी इस लिए गीता में भक्तों को चार श्रेणियों में विभाजित किया है अर्थार्थी जिस में निकृष्ट माना है केवल ज्ञानी जो कि इच्छा रहित होता है उसे उत्तम कहा है। इससे सिद्ध होता है कि निष्काम कर्म योगी भक्त ही सब उपासकों में श्रेष्ठ है। और भी भक्ति में यह विशेषता है कि मनुष्य के मन की स्वाभाविक रचना ऐसी है कि सगुण वस्तुओं में भी जो अव्यक्त होती हैं अर्थात् इन्द्रिय नेत्रादि को जो अगोचर हैं उस पर प्रेम रखना बहुत ही कठिन दुःसाध्य है। क्योंकि मन स्वभाव से ही चंचल है। इस लिए जब तक उस के सामने आधार के लिये कोई इन्द्रिय गोचर स्थिर वस्तु न हो मन बारम्बार भूल जाता है। इसे स्थिर करने में साधारण मनुष्यों की क्या गणना बड़े २ ज्ञानी जनों को चित्त की स्थिरता दुष्कर प्रतीत होती है। अतएव जिस प्रकार रेखा गणित में रेखा की कल्पना के लिये जो अनादि, अनन्त और बिना चौड़ाई की है किन्तु लम्बाई के गुण से जो सगुण है, उस रेखा का नमूना तख्ते पर दिखला कर व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार ऐसे परमेश्वर में अपनी वृत्ति

लीन करने के लिए सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ जो ब्रह्म हैं यान के सामने प्रत्यक्ष नामरूपात्मक किसी वस्तु के रहे बिना साधारण मनुष्यों का काम नहीं चलता। प्रत्यक्ष मार्ग को ही भक्ति कहते हैं।

भक्ति मार्ग में मनुष्य के उद्धार करने की जो शक्ति है वह कुछ सजीव अथवा निर्जीव मूर्त्ति में, पत्थरों की इमारतों में नहीं है किन्तु उन प्रतीक में उपासक अपनी सुगमता के लिये जो ईश्वर भावना रखता है वही यथार्थ में तारक है। चाहे वह कंकर पत्थर, मिट्टी, धातु रचित पदार्थ कोई क्यों न हो। यदि भाव उत्तम नहीं तो उत्तम प्रतीक से क्या? भावनाओं से ही फल प्राप्ति होती है। इस लिए भगवान कृष्ण ने कहा है।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्

जो जिस प्रकार मुझे भजते हैं उसी प्रकार मैं भी उन्हें भजता हूं। सब लोग जानते हैं कि शालिग्राम पत्थर की मूर्ति है उस में यदि विष्णु भाव रक्खा जाय तो विष्णुलोक मिलेगा, यदि प्रतीक में राक्षस भूतों की भावना की जाय तो भूतों के ही लोक प्राप्त होंगे। लौकिक व्यवहार में मूर्ति पूजा के प्रथम उसकी प्राण प्रतिष्ठा की जो रीति है उसका भी रहस्य यही है इस लिए कहा है "देव भाव का ही भूखा है"।

भक्त के लिए प्रारब्ध, क्रीयमान संचित झगड़े नहीं क्योंकि प्रेम में तल्लीन हो तुकाराम जी महाराज एकान्त में भजन करते समय भगवान से कहते हैं।

एक बात एकान्त में सुनलो जगदाधार।
तारे मेरे कर्म तो प्रभु का क्या उपकार॥

इसलिए भक्ति मार्ग में यह वर्णन पाया जाता है कि वायु उसके भय से प्रवाहित होती है, सूर्य चन्द्र उस की ज्योति से प्रकाशित हैं। उसकी इच्छा बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता, यही कारण है कि भक्ति मार्गमें कहते हैं कि मनुष्य केवल निमित्त मात्र है और उसके समस्त व्यवहार हृदय स्थित हो परमात्मा करता है। इसी भाव पर भगवान कृष्ण ने कहा है "जो कुछ तू करे मुझे अर्पण कर"।

वस्तुतः यदि हम अपने समस्त कर्म कृष्णार्पण भावसे करें तो पाप वासना व कुकर्म कैसे रह सकते हैं? इसीलिये समस्त कर्म कृष्णार्पण बुद्धि से करने चाहियें क्योंकि सब प्राणियों के हृदय में निवास करके वह परमेश्वर ही मंत्र के समान सब को नचाता है। इस लिये ये दोनों भावनायें मिथ्या हैं कि मैं इस कर्म को करता हूं या छोड़ता हूं। यदि तू इसका निग्रह करेगा कि मैं इन कर्मों को नहीं करूंगा तो प्रकृति धर्म के अनुसार तुझे उन कर्मों को करना होगा। अतएव परमेश्वर में अपने स्वार्थों का लय करना, उसी को सब कर्मों का अर्पण करना भक्ति का उत्तम रहस्य है।

भक्ति के लिये सम बुद्धि हृदय शुद्धता की आवश्यकता है फिर चाहे वह बढ़ई, सुनार, भंगी, कसाई कोई क्यों न हो इसी भाव पर साधु तुकाराम जी का एक अमूल्य पद यह है।

क्या द्विजाति क्या शूद्र ईश को,
वेश्या भी भज सकती है।
श्वपचों को भी भक्ति भाव में,
शुचिता कब तज सकती है॥

अनुभव ये कहता हूं मैंने,
कर लिया है उसको बस में।
जो चाहे सो पिये प्रेम सो,
अमृत भरा है इस रस में॥

अधिक क्या कहें गीता शास्त्र का भी यही सिद्धान्त है "मनुष्य कैसा ही दुराचारी क्यों न हो यदि अन्तकाल में भी अनन्य भाव से भगवान की शरण जावे तो भगवान उसे नहीं भूलता"। पवित्रता का पाखंड करने वाले, सच्चे तत्व को न समझने वाले मूर्ख भले ही इनमें तर्क वितर्क करें किन्तु उनके धर्म ग्रन्थों में ऐसी अनेक कथायें हैं। बुद्ध ने अम्रपाली नामक किसी वेश्या को दीक्षा दी थी। अध्यात्मशास्त्र की दृष्टि से यही सिद्धान्त निष्पन्न होता है। परन्तु यह धर्म तत्व शास्त्रतः यद्यपि निर्विवाद है तथापि जिस का सारा जन्म दुराचरण में व्यतीत हुवा है उसके अन्तःकरण में केवल मृत्यु के समय ही आनन्द भाव से भगवत् स्मरण बुद्धि कैसे जाग्रत हो सकती? इसी लिये परमेश्वर के अर्पण की हुई बुद्धि से मुक्ति है।

उपासक को आवश्यक है कि भगवान के वाक्यों पर विश्वास रखे। भगवान निश्चित आश्वासन देते हैं कि इन अनेक धर्म मार्गों को छोड़ कर तू केवल मेरी शरण में आ, मैं तुझे तमाम पापों से मुक्त कर दूंगा डर मत। साधु तुकाराम जी सब धर्मका निरीक्षण कर अन्त में भगवान से यही मांगते हैं।

चतुराई चेतना सभी चूल्हे में जावे,
बस मेरा मन एक ईश चरणाश्रय पावे।
आग लगे आचार विचार के उपचय में,
उस विभु का विश्वास सदा रहे हृदय में॥

निश्चय पूर्वक उपदेश प्रार्थना की यह चरम सीमा है। कौन ऐसा नराधम होगा जो इस सुगम भक्ति पथको छोड़ इधर उधर भटकता फिरे प्रभु की शरण में होने के ३ भेद हैं। मैं प्रभु का हूं, प्रभु मेरे हैं और दोनों एक ही हैं अर्थात् मैं वही हूं। प्रथम शरण यद्यपि मृदु है, तो भी इस भेद बुद्धि है जो नहीं होनी चाहिये, तथापि वह शरण की श्रेष्ठता को पहुंचाती है। दूसरी में महद्भाव है वह प्रार्थना करता है मैं तुम्हारा हूं। गोपियों ने जाना कृष्ण हमारे हैं हमारे हृदय से जाओ तप आपका पराक्रम जाने यह तीसरी शरण सब में श्रेष्ठ है। यह भक्ति ही शान्ति निकेतन पथ की ओर अग्रसर करने वाली उत्तम संगति है। इसका सबको अनुसरण करना चाहिये।

भजन

होरी

बुद्धि मोरी तज दे न कलि होरी

झूठा रंग में रंग रंगायो, सब ही ढंग बिगोरी
इतै गुलाल उडै भर झोरी, फंस उत चौरासी झोरी
सांचा पति से मोड़ लियो मुख, नकली पति से जिय जोरी
मन मानी अब लग भल कीन्ही, अब तो सीख मान मोरी
होरी बान्ध कृष्ण पद पंकज, सबसे डार नेह तोरी
धरो समेट कीनि अवि लागि जो चले ना तहां कपट चोरी
श्याम रंग रंग मन से हेरो, माधव खेले अस होरी

भजन नं० २

आप बिन कौन सुने प्रभु मेरी ॥ टेक ॥
तुम समरथ सब लायक दाता मोपर कृपा करो री १
दास की बिपत निवारण कीजे, अर्ज करूं कर जोरी।
के कोई भीड़ पड़ी भकन पर, जहां जहां कांनी फेरी।
कै तेरे घर में टाटो आगयो, कै नेड़ा ने घेरी ॥ ४ ॥
कहत कबीर देर कहा कीनी, नाथ शरण में तेरी ॥५

३

मेरी भरोखे आव कुंवर दिखलाऊं नन्द को ॥ टेक ॥
जा देखे मैया सुख सुख उपजे,
पाप कटे तेरे तन मन को ॥ १ ॥
दुरयान करोड़ जादों चढ़ आये,
राखो मान राजा भीष्म को ॥ २ ॥
शिशुपाल की सेना मारी,
छत्रछिरायो जरासिन्ध को ॥ ३ ॥
बैठ पताल कालो नाग नाथ्यो,
दधि लूटो सब ग्वालिन को ॥ ४ ॥
दश मस्तक रावण के छेदे,
शीश उतारो मामा कंस को ॥ ५ ॥
पद्म भंने पद्म पाये लगूं,
उदर बिदारयो हिरणाकुश को ॥ ६ ॥

४

तेरी काया रहे अलमस्त नाम की पीले ना बूटी ॥टेक
तन की कूंडी मन का सोटा, सत की रगड़ बूंटी।
चश्मों के रूमाल से छान, तेरे इस तनकूं लगे बूंटी ॥
आया मुट्ठीबांध कर तू, जायगा खुली मुट्ठी।
जरा आंख खोल कर देख तेरी यह जिन्दगानी झूठी।
काल अचानक आकर इक दिन, लंका सी लूटी।
शाल दुशाला काम न आवें, टंगा रहे खूंटी ॥ ३ ॥
एक तो बेड़ा पड़ा समुद्र में, दूजे नाव टूटी।
कहे सियाराम समझले नर, नहीं कर से डोर छूटी ॥

५

बिघन निवारण तुम हो गनेशा ॥ टेक ॥
पार्वती के पुत्र कहाओ,
शिव की पुरी के तुम हो नरेशा ॥
एक दन्त दूजी सूंड बिराजे,
मूसे से बाहन गल विच शेषा ॥
भ्याता के प्रभु दास दामोदर,
जैशिव जैशिव उज्वल भेषा ॥

६

कैसे सुध बिसराई नाथ मेरी ॥ टेक ॥
तुम बिसरायो कोई न संगी,
मात पिता सुत भाई।
दुनिया दारी मतलब नाता,
यह जग रीत चलाई ॥ १ ॥
दीन दयाल नाम है तुमरो,
दीनन करत सहाई।
जल डूबत गजराज उबारयो,
छिन में लियो बचाई ॥ २ ॥
भारत में भंवरी का अण्डा,
बचा लिया जदु राई।
सैन भगत का कारज सारया,
आप बने हरि नाई ॥ ३ ॥
पलपल खबर लेत प्रभु मेरी,
अब क्यूं नजर छिपाई।

कहत कबीर आस प्रभु तुमरी,
तुम पूरण सुखदाई ॥ ४ ॥

७

कैसे अण्ड उड़ाऊं बिना पर ॥ टेक ॥

दोऊ दल जुड़े अक्षोहनी अठारह, कैसे अण्ड बचाऊं
चपला होय तो संग ले उड़ती, अण्ड कहां लेजाऊं ॥
दीन दयाल गोपाल सांवरा, और किसी पा जाऊं।
तुम जानत हो प्रभु घटघट की, तुम को क्या समझाऊं
बोलत कृष्ण क्षमा कर पंछी, तोय गजराज पठाऊं।
तेरे अण्डा दबता दीखे, घंटा तोड़ बजाऊं ॥ २ ॥
इतनी सी कह के निकस्यो पंछी, चरणन सीस नवाऊं
सूर सहाय करी अण्डन की, जन्म जन्म जस गाऊं॥

८

कान्हा तेरी रे जोवत रह गई बाट ॥ टेक ॥

जोवत जोवत इक पग ठाढ़ी, कालिन्दी के घाट ॥१॥
कपटी प्रीत करी मन मोहन, या कपटी की बात ॥२
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, दे गयो व्रज को चाट ३

९

रावो जी ध्वजा फहराई ॥ टेक ॥

धड़कत ढाल फरकत नेजा,
गई चढ़ी असमानी।
लछमन वीर बाल सुत अंगद,
हनुमान अगवानी ॥ १ ॥
कहत मन्दोदर सुन पिया रावण,
यह क्या कुमति कमाई।
उनकी जानकी तुम हर लाये,
मारेंगे धनुष चढ़ाई ॥ २ ॥
तिरिया जात बुद्धि की ओछी,
उनकी करत बड़ाई।
ध्रुव मण्डल से पकड़ मंगाऊं,
वह तपसी दोनों भाई ॥ ३ ॥
मेघनाथ से पुत्र हमारे,
कुम्भकरण से भाई।
लंक सरीखे कोट हमारे,
रत्नाकर सी खाई ॥ ४ ॥
हनुमान से पायक उनके,
लछमन से बल भाई।
जलबी अग्नि में कूद पड़ेंगे,
वह कोट गिने ना खाई ॥ ५ ॥
तू क्यों करे ये नार मनोहर,
पीहर दूंगा पठाई। ॥ ६ ॥
रामचन्द्रजी के सन्मुख लड़स्यूं,
युग युग होय बड़ाई ॥ ६ ॥
रावण मार राम घर आये,
घर घर बजत बधाई।
मात कौशल्या करत आरती,
तुलसीदास यश गाई ॥ ७ ॥

१०

विघ्न हरण सुख कन्द सिद्धि सदन वारण बदन।
दमन करो दुःख द्वन्द्व लम्बोदर गणपति सदा।

गणपति गिरिजाजी के लाल,
सारे विघ्न मिटाने वाले ॥ टेक ॥

हो तुम गौरी पुत्र गणेश, तुम्हें शिरनावें शारद शेष।
निश दिन रटते तुम्हें महेश, मोदक भोग,लगाने वाले।
प्रभु तुम हो मूषक सवार, मेटत विघ्न रूप अंधियार
तुमरा पायें न कोई पार, बिगरे काज बनाने वाले।२
गजानन लम्बोदर वागीश, बहु नर कहें तुम्हें जगदीश
सब ही देव नवावें शीश, प्रभो इकदन्त कहाने वाले॥
प्रथम सब धरें तुम्हारा ध्यान, हम हैं बाल मूढ़ अज्ञान
दीजे बल विद्या अरु ज्ञान, विद्या बुद्धि बढ़ाने वाले।४

भक्ति के नियम

१. भगवान की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, मामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नाम से और व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९ पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ	विषय	लेखक	पृष्ठ
१. भगवद्वचन		२०१	९. पुकार [ले० श्री० हरिकृष्ण दास जी गुप्त दिल्ली		२१९
२. भक्तों के चरित्र [सम्पादक		२०२	१०. कलि सन्तरणोपाय [ले० श्री० प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी		२२१
३. प्रार्थना (कविता)		२०५	११. श्रीमद्भगवद्गीता [ले० श्री० पूज्य महादेव सरस्वती		२२४
४. भक्ति महारानी का शीश महल [ले० श्रीभोले बाबा अनूपशहर		२०६	१२. जिज्ञासु कर्तव्य [ले० श्री० महात्मा राम		२२५
५. हरि स्मरण (कविता) [एक महात्मा		२१३	१३. भक्ति मार्ग [ले० श्री मनोरमादेवी		२२८
६. उच्च उद्गार (कविता श्री० शोभारामजी धेनु सेवक		२१५	१४. भजन		२३१
७. दम [ले० श्री० हरि ओं ब्रह्मचारी		२१५			
८. वह छवि [ले० श्री० आनन्दीप्रसाद जी मिश्र "निर्द्वन्द्व"		२१७			

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रेवाड़ी।

भक्ति के संरक्षक

राव बहादुर ला० सेवकराम जी एम. एल. सी, बार-ऐट-लौ लाहौर	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१११)
ले० क० सरदार रघुवीरसिंह जी सांधोवालिया राजा सांसी, अमृतसर	१११)
राय बहादुर ला० बनारसीदास जी रईस, मिल ओनर अम्बाला	१०१)
श्रीमान भाई नारायण सिंह जी हीरामण्डी लाहौर	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा	५१)
सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा	५१)
राव श्रीराम जी रईस नांगल	२५)
म० शोभाराम जी डूंगरवास	"
चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी	"
राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास	"
बा० स्वयम्बरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्ज पटना	"
श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	"
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया चावड़ी बाजार दिल्ली	"
बख्शी चाननशाह एम. ए. एल. एल. बी. इन्कमटैक्स आफीसर जालंधर	"
पं० मूलचन्द जी शर्मा (डहीना निवासी) अकाउण्टैन्ट हेड आफिस जयपुर	"
ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी।	"
राजा रूपसिंह जी रईस जिहाजगढ़।	"
पं० गोपीनाथ जी [बिहाली निवासी] मालिक फार्म काशीनाथ बच्चूमल गली परांवठा दिल्ली	"
श्रीमती खुशालदेवी धर्मपत्नी चौ० नवलसिंह जी कोसली।	"
सेठ शिम्भुदयाल जी बीकानेर	"
चौ० रामजीलाल जी धवाना, हांसी	"
चौ० चन्दनसिंह जी कप्तान दतिया राज्य	"
ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नारनौ	"
ला० दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर	"
राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली	"
लक्ष्मी देवी खोसल धर्मपत्नी ला० बद्रीनाथ जी बी. ए. श्रीनगर	"
बाई बदामो देवी पुत्री ला० गनेशीलाल चर्खीदादरी	"
श्रीमती भक्ताणीदेवी धर्मपत्नी भक्त नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी	"
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी ला० प्रभुदयाल जी	"
श्री० गणपतिदेवी धर्मपत्नी ला० गंगाप्रसाद जी दादरी वाले, साहबगंज	२५)
सेठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा	५१)
भक्खी चाण्डूमल बलीराम जी भटण्डा	५१)
सर आपा राव सातोले साहिब सी० एस० ई० के० बी० ई० रैवेन्यू मेम्बर गवालियर	५१)
राव गजराजसिंह जी बी० ए० एल० एल० बी० गुड़गांवा	२५)
सेठ नागरमल जी सेखासरिया आनरेरी मजिस्ट्रेट मिचनाबाद	२५)
एस० जे० राव पंवार होम मेम्बर गवालियर स्टेट ,,	"

	२५)
राय बहादुर सरदार बसाखासिंह जी नई दिल्ली	२५)
ला० रामकुंवार जी सीनियर सब जज जालंधर	२५)
सरदार भगतसिंह एडवोकेट जालंधर	२५)
पी० एन० कौल बैरिस्टर दिवान भूतपूर्व देवास स्टेट लाहौर	२५)
चौ० सुन्दरलाल नन्दलाल रईसान कमालिया जि० मिन्टगुमरी	२५)
सूबेदार जगरामसिंह जी कांसली	२५)

सहायक

चौ० हुकमसिंह जी निखरी	११)
बा० बैकुण्ठनाथ जी दिल्ली	११)
पं० जगन्नाथ जी रेवाड़ी	११)
चौ० शिवप्रसाद सेक्रेटरी अहीर स्कूल रेवाड़ी	५)
रामप्रसाद जी झाड़सा	५)
चौ० रामजीलाल जी कन्स्टेबल नांगलोई	५)
भक्त बनारसीदास जी दिल्ली	५)
महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी।	५)
श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौ० जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ़।	५)
चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना	५)
श्रीमान् पं० जयराम जी शर्मा 'सनातन' इलाहबाद बैंक देहली।	५)
ला० बनारसी दास जी, अकाउण्टेण्ट हजूरी, संगरूर।	५)
महन्त प्रकाशानन्द जी मन्दिर चरणदासियान बल्लीमारान दिल्ली	५)
मि० एल. के. मिसरा इंस्पेक्टर, पोस्ट आफिस जयपुर	५)
राय बहादुर लेखनारायण सिंह जी बाढ़, पटना	५)
डाक्टर कवलकिशोर सिंह जी कलकत्ता	५)
राव साहब बांकेबिहारीलाल जी बी० ए० तहसीलदार चिड़ावा	५)
सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी	५)
ला० रामचन्द्र जी वैद्य ,,	५)
राव धीमाराम जी गढ़ीबोलनी	११)
बा० शिवरामसिंह जी ,,	७)
जमादार दीपचन्द जी ,,	५)
चौ० इन्द्रसिंह जी सिरहौल	१०)
ला० ओंकारमल जी कानपुर	५)
चौ० गणपतसिंह जी यादव पटीकड़ा परगना नारनौल	११)
चौ० मनोहरसिंह जी ,, पाल्हावास, रेवाड़ी	११)
ला० छोटेलाल घासीराम जी आर्यन मर्चेण्ट चावड़ीबाजार दिल्ली	११)
चौ० दौलतराम जी पटवारी नाहरी, सूबा दिल्ली	५)
भक्त हरीचन्द जी प्रेमसहायक, ,,	,,
चौ० धर्मसिंह जी कालूवास, तहसील रेवाड़ी	,,

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१. भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित	मूल्य	॥=)
२. सारसंग्रह	”	=)
३. शब्दसंग्रह	”	-)॥
४. भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	”	।-)
५. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	”	-)।
६. वेदोपनिषत्	”	।-)
७. ज्ञानधर्मोपदेश	”	-)॥।
८. भाषा फक्किका प्रकाश	”	॥)
९. भक्ति योग संग्रह	”	=)॥
१०. शब्द संग्रह गुटका	”	।)
११. शब्द सदाचार संग्रह	”	-)।

मिलने का पताः—

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

केवल टाइटिल पेज महारथी प्रेस, दिल्ली में छपा।